है । शरीरमें स्थूल और सूक्ष्म, अनेक शक्तियां है । स्थूल शक्ति अधिक बढानेसे सूक्ष्म शक्तियोंकी प्रगति रुक जाती है और सूक्ष्म शक्तियोंके बढानेका प्रयत्न किया तो स्थूल शक्तियां क्षीण होती है । इसलिए इन दोनों शक्तियोंका समविकास करना मनुष्यका प्रथम कर्तव्य है । मनुष्यके अंदरकी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियोंका नामही 'अध्यात्म शक्ति' है और इन शक्तियोंका विकास करनाही 'आध्यात्मिक शक्ति-विकास' है । **'वाक्... प्राण... चक्षुः... श्रोतं... इत्यध्यात्मम् ।** (छां.उ. ३।१८।२)' वाणी, प्राण नेत्र, श्रोत्र इत्यादि शक्तियां आध्यात्मिक शक्तियां है । इनका विकास आध्यात्मिक शक्तिका विकास है । स्थूल शक्तियां बढकर सूक्ष्म शक्तियोंकी सहायता करें और सूक्ष्म शक्तियां बढकर सूक्ष्म शक्तियोंकी सहायक बनें, इसका नाम है समविकास । **'आध्यात्मिक कार्यक्षेत्र'** का तात्पर्य वैयक्तिक शक्तियोंका कार्यक्षेत्र है ।

(५) आधिभौतिक कार्यक्षेत्र ।

व्यक्तिकी यह शक्ति जैसे जैसे बढती जाएगी, त्यों त्यों उसके बाह्य कार्यक्षेत्र विस्तृत होते जाएंगे । उसके क्रमशः कुटुम्ब, परिवार, संघ, जात, राष्ट्र, मानवजनता, प्राणी, समष्टि इत्यादि कार्यक्षेत्र एकसे एक उसकी अन्तःशक्तिके विकासानुसार विस्तृत होते जाएंगे । मनुष्य व्यक्ति सम्पूर्ण समष्टिके आधारसे स्थिर है । व्यक्तिका पूर्ण विकास होनेसे पूर्व वह व्यक्ति समष्टिके कार्य करनेके लिए योग्य नहीं हो सकती । अतः व्यक्तिको अपनी योग्यता बढाकर अपनी शक्तिका यज्ञ समष्टिके हितार्थ करना चाहिये ।

(६) आधिदैविक कार्यक्षेत्र ।

इससे अगला कार्य विश्वके सम्बन्धमें जो कुछ मनुष्यके करने योग्य है वह है । इस जगत्में जो विश्वशक्ति है, उस शक्तिसे व्यक्ति और संघकी सहायता करवाना, अग्नि, जल, वायु, विद्युत् इत्यादि प्रचण्ड दैवी शक्तियां है उन्हें अनुकूल करके उनसे जनता और व्यक्तिके हितके कार्य कराना, यह 'आधिदैविक कार्यक्षेत्र' है ।

(७) यज्ञ और अयज्ञ ।

मनुष्यको इन त्रिविध कार्यक्षेत्रोंमें अनेक कर्तव्य करने है । और उनके द्वारा वैयक्तिक तथा सामुदायिक सुख और शान्ति प्राप्त करनी है । यह मनुष्यके कार्यक्षेत्रकी व्याप्ति है । वैयक्तिक और सामुदायिक कर्तव्य करते हुए व्यक्तिके हितके लिए समाजके हितका अर्थात् व्यष्टिके हितके लिए समष्टिके हितका नाश होना नही चाहिए । व्यक्तिको समष्टिके लिए आत्मसमर्पण करना 'यज्ञ' और व्यक्तिका अपने सुखके लिए समष्टिके हितका नाश करना यह **'अयज्ञ'** है । यज्ञसे मनुष्यकी उन्नति और अयज्ञसे अवनति होती है । ऊपर जो 'जगत्या जगत्' (मं. १) = समष्टिके आधारसे व्यक्ति है, ऐसा कहा है उसका उद्देश यही है । जिस आधारसे व्यक्ति स्थित है, उस आधारको अपने सुखके लिए नष्ट नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस आधारका नाश हुआ तो फिर वह व्यक्ति कहां रहेगी? अतः अपने आधारको नष्ट करनेका भाव अपने आपका नाश करना है । अयज्ञसे जो नाश होता है वह इस प्रकार है ।

(८) कर्म, अकर्म और विकर्म

व्यक्ति और संघके कर्तव्योंका कार्यक्रम परस्पर अविरोधसे होना चाहिए इसका स्पष्टीकरण **'कर्मक्षेत्र'** के तीन मंत्रोंमें किया है । उसके अनुसार प्रत्येकको अपने कर्तव्य करने चाहिए । केवल अस्तित्वके लिएही जो कर्तव्य करने है उनका नाम **'अकर्म'** है । क्योंकि उनका परिणाम व्यक्तितक सीमित है । ('अकर्म' शब्दका निष्काम कर्म ऐसा दूसरा अर्थ भी है ।) जो कर्तव्य व्यक्ति और समाजके हित करनेवाले है और जो यज्ञ बुद्धिसे किए जाते है, उनका नाम **'कर्म'** है । यज्ञवाचक सब शब्द इसी कर्मके पर्याय शब्द है और व्यक्ति तथा समाजका घात करनेवाले जो कर्म है, उन्हें **'विकर्म'** अर्थात् विरुध्द कर्म या जो नही करने चाहिए ऐसे कर्म, कहते है । अकर्म तथा कर्म, ये दोनों अविरोधपूर्वक करने चाहिए । केवल विकर्म नहीं करने चाहिए । कर्मक्षेत्रोंमें यह कर्मकी व्याप्ति इतनी विशाल है । तथापि ज्ञान द्वारा अपने कर्तव्य कर्म योग्य रीतिसे करना मनुष्यकी उन्नतिके लिए अत्यन्त आवश्यक है । इसीलिए **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** (मं. २) = 'कर्म करने चाहिए', ऐसा उपदेश किया गया है । इस मंत्रमें कर्म करने चाहिए ऐसा जो कहा है, वे कर्म कौनसे यह ऊपर दिखाया गया है । व्यक्ति और संघकी उन्नति करनेवाले जो यज्ञरूप कर्म है वे ही करने चाहिए और इन कर्मोंको करते हुए **जिजीविषेच्छतं समाः'** । (म. २)= **'सौ वर्ष जीनेके इच्छा कर'** । यह वेदका उपदेश है । **'न कर्म लिप्यते नरे'** । (मं. २)= **'कर्मोंका लेप मनुष्यको नही लगता'** ऐसा जो कहा है, वे येही

यज्ञरूप कर्म है । ये मनुष्यको पवित्र करते है, उच्च पदको प्राप्त कराते हैं और पूज्य बनाते है ।

इस प्रकार **'ज्ञान और कर्म'** इन दोनों साधनोंसे साधकका कैसे लाभ होता है और उनके द्वारा आत्मोद्धार कैसे करना चाहिए यह यहां दिखाया है । ये दो, एकहीकी दाई और बाई बाजू है, अथवा एकही उन्नतिके रथके ये दोनों पहिये है । इनके द्वारा उन्नतिके मार्गपर मनुष्यके चलनेसे उसका विकास होकर, उसे अंतमें जो पद प्राप्त करना है वहां पहुंच जाता है ।

(९) अमरत्व प्राप्तिका मार्ग ।

'कर्मक्षेत्र' का वर्णन करनेवाले जो (१२-१४) मंत्र है उनमें 'वैयक्तिक कर्मोंद्वारा अपना विनाश दूर करके, संघनिष्ठा द्वारा समुदायके लिए कर्म करते हुए अमृतत्वको प्राप्त करे' (मं. १४) ऐसा कहा है । इसका थोडासा यहां मनन करना चाहिए । संघनिष्ठाका क्या अर्थ है और उससे अमरत्व कैसे प्राप्त होता है, यह यहां विचार करनेयोग्य प्रश्न है । संघनिष्ठ पुरुष यदि वास्तवमें अमर होता है तो चोर डाकू भी कहीं किसीसे कम संघनिष्ठ नहीं । है ऐसी अवस्थामें यहां 'संघनिष्ठा' शब्दसे क्या दिखाया गया है इसका विशेष विचार करना चाहिए । इन (१२-१४) मंत्रोंके अर्थमें 'संघभाव और असंघभाव' ऐसा शब्द प्रयोग किया गया है । यहां 'भाव' शब्दका अभिप्राय भक्ति ऐसा समझना चाहिए ।

भाव अथवा भक्ति केवल ईश्वर पर ही रखनी चाहिए। ईश्वर हमारा पूज्य पिता है और उसके हम **'अमृतपुत्र'** है। अथर्ववेदमें **'अनुव्रतः पितुः'** (अथर्व. ३।३०।२) 'पिताके कार्यकी आगे चलानेवाला पुत्र हो' ऐसा कहा है । इस नियमानुसार हम सब यदि परमेश्वरके पुत्र है, तो उसके चलाए हुए कार्योंको आगे चलाना या उसके कार्योंका भाग हम अपने ऊपर लेकर उसे योग्य रीतिसे पूर्ण करना हमारा कर्तव्य होता है ।

ईश्वरके कौनसे कार्य जगत्में चले हुए है ? ईश्वरके तीन प्रकारके कार्य यहां प्रचलित है। **'सज्जनोंका संरक्षण, दुष्टोंका दमन और धर्मका संस्थापन ।'** (भ.गो. ४।८) ये तीन प्रकारके कार्य परमेश्वर कर रहा है ऐसा सब आर्यशास्त्र कह रहे हैं । येही कार्य हमने किए, या इन कार्योंमें भाग लिया तो हम परमेश्वरके कार्य आगे चला रहे है ऐसा होगा । यही उसकी भक्ति या सेवा है । परमेश्वरकी भक्ति अथवा सेवा करनी चाहिए ऐसा जो कहा है, वह सेवा यही है ।

भक्ति, भजन,' इन शब्दोंका अर्थ 'सेवा और सेवन' यही है । **(भज् सेवायां)** भज् धातुका अर्थ सेवा करता है । पिताकी सेवा पुत्रको करनी चाहिए इसका अर्थ यह है कि पिताद्वारा चलाए कार्योंमें अपना भाग बढाना चाहिए । सेवक यही कार्य स्वामीके लिये करता है । ईश्वरके सेवकको भी यही कार्य परमेश्वरार्पण बुद्धिसे नित्य करने चाहिए ।

'सज्जनोंका परिपालन, दुर्जनोंका शासन और मानव धर्मकी स्थापना' ये ईश्वरके कार्य हमें करने चाहिए, यही भक्ति है । और इन कर्मोंका करना यह सच्चा **'भक्ति मार्ग'** है । अपनी शक्तिके कारण दुर्जन अनेक प्रकारके दुःख अशक्तोंको देते है । उन दुःखोंसे अशक्तोंका संरक्षण, करने उन्हें सुखी करना, यह 'जनतामें जनार्दनकी उपासना' करना है । विद्यासे, शक्तिसे, अधिकारसे वा धनसे युक्त पुरुषोंकी सेवा करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनकी सेवा करनेवाले उन्हें चाहिए इतने मिल सकते है । परन्तु जो विद्वान् नही है, बलाढय नही है, अधिकारी नही है, या धनवान् नही है, उन्हें कोई सहायक नही मिलता । अतः ऐसे दीन जनोंकी सेवा करना, उसकी स्थिति सुधारना, उसकी उन्नतिके लिए अपने आपको समर्पित कर देना, यह 'ईश्वरकी सेवा' है। दीनोंकी दया यह संतोंका मूल धन है । (तुकाराम) । इसी मूल धनसे यह भक्तिका व्यापर करना है । जो संघभावना, संघनिष्ठा या संघोपासना अथवा संभूतिकी उपासना इस ईशोपनिषद्में कही है वह यही है । ईश्वर **'दीनोद्धारक'** है । इसी दीन जनोद्धारणके कार्यका करना जनसंघकी उपासना है । 'गुरुकी सेवा करनी चाहिए । अर्थात् गुरुको किसी बातकी न्यूनता नहीं रहनी चाहिए । इसी प्रकार दीनोंकी सेवा करनी चाहिए , अर्थात् उनका दीनपन हटाकर, उन्हें अदीन बनाकर उनके उद्धारार्थ जो कुछ करना आवश्यक हो वह करना चाहिए ।

यही दीनोद्धारका काम परमेश्वरकी भक्ति है । दुःखितोंके दुःख देखकर अन्तःकरण खिन्न होना चाहिए। इस विषयमें अथर्ववेदका मंत्र देखिए-

ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्ने प्रमुमोमक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥
(अथर्व. २।३४।३)

'जो तेजस्वी लोग बद्ध मनुष्यको अपने मन और चक्षुसे अनुकम्पापूर्ण दृष्टिसे देखते है, उन्हें ही प्रजाजनके साथ रमण करनेवाले विश्वकर्ता तेजस्वी देव प्रथमतः विशेष रीतिसे मुक्ति करता है ।'

इस मंत्रमें भी यही कहा है कि दन, दुःखी, बद्ध और परतंत्र लोगोंपर जो लोग दया करते हैं, उनकी दीनता दूर करनेके लिए अविश्रांत परिश्रम करते हैं, उन्हेंही सबसे प्रथम (प्रमुमोक्तु) वह मुक्त करता है, क्योंकि विश्व निर्माता देव (प्रजया संरराणः) जनतामें रहता हुआ उनके आनन्दसे आनन्दित होनेवाला है । इसीलिए वह जनताके दुखोंको देखकर खिन्न होता है और जनताको कष्ट देनेवाले उन दुष्टोंके दलनेके लिए प्रेरणा करता है। 'संघभक्ति' क्या है, कैसी प्राप्त करनी चाहिए, और उसे करनेसे (अमृतत्वं) अमरन कैसे प्राप्त होता है, यह इस विवेचनसे ध्यानमें आ जायेगा ।

वेद प्रतिपादित **'भक्तिमार्ग'** यह है । किस मनुष्यकी जितनी योग्यता होगी, उतने अधिकारक्षेत्रमें वह कार्य कर सकेगा। एकाध वैद्य निर्धन रोगीका योग्य औषधोपचार करके मैने ईश्वर सेवा की ऐसा समझ सकता है । दूसरा कोई तृषितको थोडा जल देकर वैसीही ईश्वर-सेवा कर सकता है । कोई वीर परतंत्र देशको पीडित करनेवाले शत्रुको दूर करने जनताको स्वतंत्र करके परमेश्वरकी सेवा की ऐसा समझ सकता है ।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

(भ.गी. १८।४६)

स्वकर्मोंसे ईश्वरको उपासना करके सिद्धि प्राप्त करनेका यह मार्ग है । ये कर्तव्य क्षेत्र विविध है और कर्ताकी पुरुषार्थ शक्तिके अनुसार उसके कर्तव्य भी अनेक है, परंतु उन सबका तत्त्व 'जनतामें जनार्दनकी सेवा' यही एक है । यही 'भक्ति मार्ग' है और पूर्वोक्त 'ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग' ये दोनों मार्ग इसके अन्तर्हित होते है । इस मार्गसे जानेवाला भक्तही सरल और शीघ्र मुक्त होता है, यह उपरोक्त अथर्व वचनसे स्पष्ट प्रतिपादित है।

आजकल प्रचलित भक्तिमार्गमें इस जनसंघोपासनासे ईश्वर भक्ति होती है ऐसा कोई भी नहीं मानता और केवल 'नाम-स्मरण' ही तारक है ऐसा माना जाता है । वह यद्यपि अन्तःशुद्धि मात्रके लिए ठीक है तथापि ईश्वरकी बहिरंग उपासना वह नही है । अतः उनके कार्य आधेही होते है । **तत् उ अन्तः बाह्यतः च ।** (मं. ५) ईश्वर अन्दर है और बाहिर भी है, नामस्मरणसे यदि उसकी अन्तःकरणमें पूजा हुई, तो उसके 'नाम' से बताये कर्तव्य बहिस्थ जनता रूप जनार्दनके लिए उसे करनेही चाहिए । तभी कर्तव्योंकी आन्तरिक और बाह्य पूर्णता होनी संभव है । एक अन्तर्यामीके कर्तव्य किए तो आधा कार्य हुआ । दूसरा बहिस्थ ईश्वरके लिये कर्तव्य करनेतक कार्य पूर्णही नहीं होगा ।

अब यहां एकही प्रश्नका विचार करना है और वह यह कि 'जन संघ भक्ति' अथवा 'संभूतिकी भक्ति' या पृथिवीपर संपूर्ण जनताकी सेवा एक मनुष्यसे कैसे हो सकती है? वस्तुतः 'संभूति' में सर्व प्राणियोंकी समष्टिकी कल्पना है । किसी भी एक मनुष्यके लिए सब मनुष्योंतक अपनी सेवा पहुंचाना संभव नहीं । इसलिए अपना दया भाव और प्रेमभाव जितना संभव हो, उतना विस्तृत करनेसे, उससे जितनी जनसंघ सेवा होती, उतनी वह जनार्दनको अर्पण होगी और उतनी उसकी उन्नतीमें सहायक होगी का सब प्राणियोंतक उसकी सेवा पहुंचनेकी कोई आवश्यकता नही है । केवल उसकी संघभक्तिसे अधर्म बढना नही चाहिए इतनी सावधानी उसे रखनी चाहिए।

राक्षस भी संघोपासक थे, परन्तु वे अपने संघबलसे दूसरोंका नाश करके अपने भोगको बढानेका प्रयत्न करनेके कारण उनके प्रयत्न जनताके दुःख बढानेके लिये कारण होते थे । इसलिये ऐसे प्रयत्नोंसे अधोगति होती है । 'सब दुष्ट दूर हों, अथवा दुष्टोंकी वृत्ति बदल जाए, सज्जनोंका संरक्षण हो और धर्मका उत्कर्ष हो' । इस दिशामें जो संघकी भक्ति होती है वही उद्धारक है। इमें दूसरोंके रक्तसे सने हुए भोग हमें मिले ऐसा उद्देश नहीं है, अपितु सर्वत्र शांति फैले, मानवधर्म का उत्कर्ष हो और सब लोग सुखी हों, इस दृष्टीसे प्रयत्न करना चाहिये । इस कर्तव्यकी दिशा उस उपनिषद्ने संभूति प्रकरणद्वारा दर्शायी है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुद्धता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति, यह जो शुद्ध सनातन धर्म है, उसका प्रारंभ अहिंसासे अर्थात् भूतदयासे होकर अंत 'सर्वस्व समर्पण' में होता है। इससे राक्षसी स्वार्थको इस धर्ममें जरा भी स्थान नही है ।

सत्यनिष्ठा ।

जगत्में शान्तिकी स्थापना करना यह मनुष्यका साध्य है । और इस साध्यको साधनेके लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीन साधन है । इन तीनां साधनोंका दुरुपयोग

न हो इसलिए 'सत्य' की कसौटी मनुष्यको सदा अपने पास रखनी चाहिए ऐसा पंद्रहवें मंत्रमे सूचित किया है। 'सुवर्णका मोह छोडनेमें सत्य दिखेगा'। 'लोभ छोडना चाहिए' ऐसा कहनेके कारण संघभक्तिसे सब राक्षसी स्वार्थ और अनर्थ दूर हो सकते है।

ऐसी इस निर्लोभ सत्यनिष्ठासे पवित्र हुए ज्ञान, कर्म और भक्तिसे सर्वत्र शांति स्थापित करना मनुष्यका परम कर्तव्य है।

सिंहावलोकन।

'हमने जो कुछ किया उसका क्या परिणाम हुआ, वह हमारे उद्धारके लिए सहायक हुआ वा नहीं, कौनसे प्रतिबंध आए इसका सिंहावलोकन करते हुए उपरोक्त मार्गका अनुसरूण करना चाहिए' ऐसा पुनः १७वें मंत्रमें बताया है। **'कृतं स्मर'**='क्या किया है वह देखो और फिर आगे जो कुछ करना है वह करो'। यह उपदेश सबको सदा ध्यानमें रखने योग्य है।

इस प्रकार ईशोपनिषद्के मुख्य उपदेशोंका मनन यहां समाप्त हुआ। इसका इस रीतिसे अधिक विचार करके साधक अपनी उन्नति करते रहें। शेष उपदेश यद्यपि विशेष बोधप्रद हैं, पर वह सुगमतासे समझने योग्य होनेसे उसका यहां अधिक स्पष्टीकरण नहीं किया है।

वेदका आदेश।

कितने लोग ऐसा समझते हैं कि वेदके मंत्रभागोंमें 'आज्ञा' **(विधि)** नहीं है। 'मनुष्य'! तू यह कर और यह न कर' ऐसी स्पष्ट आज्ञा नहीं है, ऐसा जो समझते हैं, उसका अर्थ इतनाही है कि सब संहिताओंमें सभी आज्ञार्थक वाक्य नहीं हैं। परन्तु वेदोंमें बहुत आज्ञायें हैं-

(१) **मा गृधः**= लोभ मत कर।

(२) **त्यक्तेन भुञ्जीथाः**= दानसे भोग कर।

(३) **कृतं स्मर**= किए हुए कृत्योंका स्मरण कर।

इत्यादि आज्ञा इस ईशोपनिषद्मं (अर्थात् यजु.अ.४० में) हैं। इन्हें देखनेपर वेदमें आज्ञायें नहीं है ऐसा किसीको भी समझना नहीं चाहिए। परन्तु जो लोग, आज्ञायें नहीं हैं ऐसा मानते हैं, उनका अर्थ वह यह है कि- उन्हें चाहिए उतनी आज्ञायें वेदमें नहीं हैं। 'आज्ञा होनेपरही काम करना, नहीं तो नहीं' यह वृत्ति दास मनुष्योंकी है।

स्वतंत्र मनुष्य आन्तरिक स्फूर्तिसे काम करता है। लोगोंको गुलाम बनानेकी वेदकी इच्छा नहीं है, अतः वह किसीको बहुतसी आज्ञा नहीं करता; परन्तु वह ऐसी शब्द योजना करके वर्णन करता है कि उससे मनुष्यके अन्तःकरणमें स्वयं स्फूर्ति उत्पन्न हो। और वह अपनी अन्तःस्फूर्तिसे स्वतंत्रतासे अपने कर्तव्य करे तथा अपनी उन्नति करे।

इससे पाठकोंको पता चलेगा कि वेदमंत्रमें आज्ञार्थक प्रयोग बहुतसे नही हैं यह वैदिक धर्मके महत्त्वको बढानेवाली बात है। 'इन्द्र अपने बलसे शत्रुका नाश करता है' ऐसा कहतेही, 'हम अपना बल बढाकर शत्रुका नाश करना चाहिए' ऐसी स्फूर्ति मनमें उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वेदोंमें जिस देवताकी स्तुति है वह उपासकके अन्तःकरमें वैसी स्फूर्ति उत्पन्न करनेके लिये ही है। अतः वह आज्ञा न भी हुई तो भी आज्ञाकाही काम करती है। इतनाही नहीं परंतु उसका परिणाम उससे भी अधिक बडा होता है। इस दृष्टिसे वेदके प्रशंसापरके मंत्र अत्यन्त महत्त्वके है। इस ईशोपनिषद्में बहुतसे मंत्र 'आत्मा' देवताकी प्रशंसा परक है। केवल तृतीय मंत्र 'आत्मघातक' लोगोंकी निन्दा परक है। इस प्रकारसे निन्दा करनेवाले जो मंत्र हैं, वे अवनतिकारक कर्म न करनेका उपदेश करते है। 'अमुक मत करो' ऐसी निषेधक आज्ञा न करते हुए 'ऐसे आत्मघातक कर्म करनेसे ऐसी अधोगति होती है' ऐसे वेदमंत्रोंमे कहा है। यह निन्दा सुनकर ऐसे अधोगतिकारक कर्म न करने चाहिए ऐसी स्वाभाविक इच्छा मनमें उत्पन्न होती है। स्तुतिके मंत्रोंसे सत्कर्मोंकी ओर प्रेरणा तथा निन्दाके मंत्रोंसे हीन कर्मोंकी ओरसे निवृत्ति होती है। मनुष्यको दुष्ट कर्मोंसे निवृत्त कर सत्कर्मोंमे प्रवृत्त करना यह धर्मका उद्देश इस प्रकार वैदिक धर्मसे सिद्ध होता है। आज्ञा करके मनुष्योंमें गुलामीका भाव बढानेकी अपेक्षा इस प्रकारसे मनुष्यकी अन्तःप्रवृत्तिको ही बदलना सर्वथा श्रेयस्करही है।

अब वेदके सम्बन्धमें दूसरी एक बात यहां ध्यानमें रखने योग्य है। और वह यह कि वेदमें 'प्रशंसा' रूप मंत्रोंकी संख्या बहुत अधिक है और 'निन्दा' रूप मंत्रोंकी संख्या बहुत थोडी है। इस छोटीसी उपनिषदमें अठारह मंत्रोंमेंसे केवल एकही मंत्र निन्दापरक है, शेष इस मंत्र प्रशंसात्मक है। इसका कारण यह है कि 'मनुष्यका मन जिस बातका अधिक मनन करता है तदनुसार वह बनता है।' मनका यह धर्म है। इसलिए मनके सामने कौनसी बात लानी चाहिए और कौनसी नहीं, इस विषयमें अत्यधिक विचार करना चाहिए। निषेधरूपसे भी यदि बुरी कल्पना

मनके सामने रस दी जाय तो भी उसका बुरा परिणाम मनपर होता है। बुरी बुरी कल्पनायें निषेधरूपमें बार बार सामने आनेसे उनका प्रभाव धीरे धीरे मनपर पडता जाता है और अन्तमें मनके वह स्थिर रूपसे मनपर जम जाता है। इसलिये निषेधकी आज्ञाये भी बहुत थोडी होनी चाहिए और वे ऐसी भाषामें होनी चाहिए कि उनका यथासंभव मनपर प्रभाव कम पडे। 'बुरी बात मत करो' ऐसा कहनेमें प्रथम बुरी बातकी कल्पना मनुष्यको दी गई और फिर उसका निषेध किया गया। इसलिए ऐसे निषेध वारंवार मनके सामने आने लगे तो उनका अच्छा परिणाम होनेके स्थानपर उनका मनपर अनिष्ट परिणामही होगा। इसीलिए मनके इस धर्मका विचार करते हुए वेदमें बुरी बातोंके निषेधोंके भी मंत्र बहुत थोडे हैं और प्रशंसाके मंत्र प्रकाशके धर्मकी स्फूर्ति देनेवाले होनेसे अधिक है। ईशोपनिषद्में अथवा यजुर्वेदके ४० वे अध्यायमें १६ मंत्र प्रशंसापरके हैं और केवल एकही मंत्र निन्दापरक है।

उपदेश भी केवल **'सत्यधर्मकी दृष्टि'** (मं. १५) मनुष्यके मनमें उत्पन्न करनेके लियेही करना चाहिये और वह सत्यकी प्रशंसा करके किया जाना चाहिये न कि असत्यका निषेध करते हुए। वेदके उपदेशमें यह विवेक अवश्य है। इस बातको अधिक स्पष्ट करनेके लिए ईशोपनिषद्का उपदेश सर्वथा सरल शब्दोंमें नीचें दिया जाता है। भावार्थ स्पष्टतया ध्यानमें आनेके लिए उसमें कुछ शब्द अधिक प्रयुक्त किये गए हैं और कहीं कहीं क्रियापदोमें थोडासा परिवर्तन भी किया है। कहां क्या परिवर्तन किया गया है यह पीछे दिए गए उपनिषद् वचनोंसे पाठकोंके ध्यानमें आ सकता है। यह परिवर्तन इसलिये किया है कि किस मंत्रसे किस भावनाकी जाग्रति मनमें उत्पन्न होती है, यह पाठकोंके ध्यानमें शीघ्र आ सके।

उपनिषद्का भावार्थ।

शान्ति मंत्र।

वह आत्मा पूर्ण है और उससे उत्पन्न हुआ यह जगत् भी पूर्ण है। पूर्णसे पूर्ण उत्पन्न होता है। यद्यपि उस पूर्णसे यह पूर्ण उत्पन्न हुआ है तथापि वह जैसाका वैसाही परिपूर्ण रहा है, उसमें कुछ भी न्यूनतानहीं हुई है।

आत्मज्ञान।

(१) (आत्मा) ईश इस सम्पूर्ण जगत्में व्याप रहा है। इस जगत्में संघके आधारसे व्यक्ति रहता है। अतः व्यक्तिको अपने भोगोंका त्याग (यज्ञ) संघके लिए करना चाहिए और त्याग करके जो कुछ अवशिष्ट रहे उसका अपने लिए भोग करना योग्य है। कोई लोभ न करे। धन किसी एक व्यक्तिका नहीं, वह सब जनसंघका है।

(२) मनुष्य इस जगत्में सर्वदा प्रशस्त कर्मही करता रहे, और सौ वर्षतक जीनेका प्रयत्न करे। यह ही मनुष्यका धर्म है; इसे ध्यानमें रखना चाहिए। इसको छोडकर दुसरा उन्नतिका मार्ग नहीं है। सत्कर्म करनेसे मनुष्यको दोष नहीं लगता।

(३) केवल शारीरिक शक्तिके लिये ही प्रसिद्ध कुछ लोग हैं, परन्तु उनमें आत्मिक ज्ञान जरा भी नहीं होता। जो आत्मघातकी लोग है वे मरनेके बाद और जीतेजी भी,ऐसेही लोगोंमें गिने जाते है।

(४) वह आत्मा अद्वितीय, स्थिर, सबसे प्रथम, द्रष्टा और मनका भी प्रेरक है। वह इन्द्रियोंको नही दीखता। सब वेगवान् पदार्थोंकी अपेक्षा भी उसका वेग अधिक है। उसके आधारसेही मनुष्य अपने कर्म धारण करता रहता है।

(५) वह स्वयं नहीं हिलता तो भी सबको चलाता है। वह दूर होता हुआ भी सबके पास है। वह सबके अन्दर और बाहिर भी है।

(६) जो सर्व प्राणियोंके आत्मामें और आत्माको सब प्राणियोंमें देखता है वह किसीका भी तिरस्कार नहीं करता।

(७) जिस समय आत्माही सब भूत बन गया उस समय सर्वत्र एकत्वका अनुभव प्रतीत होनेसे उसे किसी भी कारणसे शोक अथवा मोह नहीं होता।

(८) वह सर्व व्यापक है। वह देह रहित, स्नायु और व्रणसे रहित है। उसी प्रकार वह शुद्ध, निष्पाप, तेजस्वी, अतीन्द्रियार्थदर्शी, मनका स्वामी, विजयी और स्वयंभू है, और वह सदा सब कर्तव्य योग्य रीतिसे करता रहता है।

(९) जिनकी दृष्टि केवल व्यक्तितकही सीमित है वे अधोगतिको जाते है और जिनकी दृष्टि केवल संघतक सीमित है वे भी अधोगतिको पाते है।

(१०) व्यक्ति निष्ठासे एक लाभ होता है और संघनिष्ठासे दूसरा लाभ होता है ऐसा विचारशील उपदेशक कहते आये है।

(११) व्यक्तिका हित और संघका हित इन दोनोंको साधना चाहिए। व्यक्तिकी उपासनासे वैयक्तिक कष्ट दूर करके संघसेवासे साधक अमर हो सकता है।

(१२) जो केवल जगत्की विद्याकेही पीछे लग जाते है वे अवगत होते हैं। इसी प्रकार जो केवल आत्माकी विद्याके पीछे लग जाते हैं वे भी अवनत होते है।

(१३) जगत्की विद्याका फल और आत्माकी विद्याका फल पृथक् पृथक् है ऐसा विचारशील उपदेशकोंका कहना है।

(१४) जगत्की विद्या और आत्माकी विद्या ये दोनोंही साथ साथ उपयोगी है। जगत्की विद्यासे (सांसारिक) दुःख दूर करके साधक आत्माकी विद्यासे अमर हो सकता।

(१५) प्राण अपार्थिव अमृत है और यह स्थूल शरीर नाशवान् है। अतः हे जीव ! ओंकारका जप कर और अपने किए हुए कर्मोंपर विचार कर।

(१६) हे देव ! हमें उत्तम मार्गसे अभ्युदयके पास ले जा। तू हमारे सब कर्मोंको जानताही है। हमारेसे कुटिल पापोंको दूर कर। इसके लिए हम सब तुझे नमस्कार करते हैं।

(१७) सत्यका मुख सुवर्णके ढक्कनसे ढका गया है। अतः यदि सत्य देखना हो तो वह सुवर्णका ढक्कन दूर करना चाहिए। शरीर धारण किया हुआ मैं प्राणशक्तिसे उन्नति चाहनेवाला तेरा उपासक हूं।

यह ईशोपनिषद्का सरल रूपान्तर है। शब्दशः अनुवाद पूर्व स्थानमें दिया है। यह यहां पुनः देकर द्विरुक्तिका दोष किया है, तथापि कई मंत्रोंका आशय केवल भाषान्तरसे एकदम ध्यानमें नहीं आसकता, अतः यह सरल शब्दोंमें रूपान्तर दिया है। इस आत्म-सूक्तमें मुख्यतः आत्माका गुणवर्णन है, तथापि प्रार्थना, उपासना, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, आज्ञा, याचना आदेश आदि सब प्रकारके मंत्र इसमें है, इस दृष्टिसे विचार करनेवालेको यह सरल रूपान्तर सहायक होगा। आज्ञा और निन्दा कितनी थोडी है और प्रशंसा कितनी अधिक है इनकी तुलना यहां देखने योग्य है। बुराईकी निन्दातक अधिक नहीं करनी चाहिए, और की भी तो बहुत थोडी। बुरे शब्दोंसे जिह्वाको थोडासा भी खराब करना नहीं चाहिए। सुविचारके शब्दही उच्चारने चाहिए। यही वेदका आशय है। देखिए-

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः।
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। (ऋ. १।८९।८)

'अच्छी बातें कानोंसे सुनें और अच्छीही बातें आंखोसे देखें।' किसी भी तरहसे, निषेध करनेके लिए भी बुराईका स्मरणतक न करें। वेदमें स्तुति और प्रशंसापरक मंत्र अधिक तथा निन्दा और आज्ञापरक कम है, इसका यही कारण है। मनका स्वभावधर्म 'मननसे तद्रूप होनेका' होनेसे वेदोंने प्रशंसनीय दिशाही लोगोंके सामने रखी है। सत्यके शिवाय शेष जो कुछ है। वह असत्यही है। उसका वर्णन करके मनको कलुषित करनेसे क्या लाभ? इसके अतिरिक्त 'सत्य एक' होनेसे उसको कहा जा सकता है, पर असत्योंकी गणना करके कहना असंभव है। उदाहरणार्थ एक और एक कितने होते है ? इस प्रकार उत्तर एकमात्र सत्य 'दो' है, इसके सिवाय शेष सब संख्याएं असत्य है। ऐसी दशामें उन सब असत्य उत्तरोंका कहना कठिन है पर इस प्रश्नका एक मात्र सत्य उत्तर 'दो' अति सुगमतासे प्रकट किया जा सकता है। यह बात सब विषयोंके सत्यासत्यके कथनमें समझनी चाहिए।

उपरोक्त मंत्रोंमें जो स्तुतिविषयक मंत्र है, वे परमात्माके गुणोंकी प्रशंसा कर रहे है। परन्तु कभी न कभी इस उपासककी आत्मा उन गुणोंसे युक्त होनेवाली है, अतः 'हमारे अन्दर विद्यमान् आत्माके भावी स्वरूपका वर्णन' यह है, अथवा 'सोऽहं' (मं.१७) = 'वह मैं हूं' ऐसा समझते हुए वह वर्णन पढनेसे अपनी उन्नति कितनी हुई है और कितनी होनी है, यह उससे ठीक ठीक ज्ञान होगा। इस तरह जाननेसे अपनी कर्ममार्गपर कितनी प्रगति हुई है इसका ज्ञान प्रत्येकको हो सकता है।

तीन मार्ग।

ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग ये तीन मार्ग है। इन्हें एकही स्तुति विषयक मंत्रमें अथवा सूक्तमें कैसे समझा जा सकता है यह अब देखिए। उपरोक्त सूक्तमें (१) जो परमात्मापरक स्तुतिका वर्णन है, वह हमारी आत्माका, उसके पूर्णत्वको प्राप्त करनेकी अन्तिम अवस्थाका वर्णन है, क्योंकि **'सोऽहं** (मं. १७)'= 'वह मै' होनेसे वह वर्णन जैसा उसका है वैसा मेरा भी है, ऐसा समझकर यह आत्माका ज्ञान हमें कितना प्राप्त हुआ है, यह देखते जाना और आगे अनुभव प्राप्त करनेका प्रयत्न करते जाना यह, 'ज्ञान मार्ग' है। (२) परमात्मा क्या करता है यह उसके वर्णनसे या स्तुतिसे जानकर तत्सदृश कर्म **'स (इव) अहं'**= 'उसके सदृश मैं' होऊंगा ऐसी भावनासे अपने कर्तव्य क्षेत्रानुसार यथा संभव निर्दोषपूर्ण

कर्म करते रहना यह 'कर्ममार्ग' है । इस विषयमें, क्या क्या बोध लेना चाहिए यह मंत्रखण्डोसे तालिका द्वारा पहिले दिया है । (३) इन दोनों मार्गोंमें कुछ समानताका नाता दिखाया जाता है । जगत्में परमेश्वरके जो महान्से महान् कार्य चल रहे हैं उनमेंसे यथा संभव भाग परमेश्वरार्पण बुद्धिसे बंटाना, उससे जनतामें जनार्दनकी यथाशक्ति सेवा करनी और फलेच्छाकी जरा भी इच्छा न रखते हुए' **(तस्याऽहं)**'= 'उसका मै हूं' ऐसी भावनासे केवल ईश्वरार्पण बुद्धिसे की गई सेवाको परमेश्वरकोही अर्पण करना, यह 'भक्तिमार्ग' है । एकही स्तुति विषयक सूक्तसे ये तीनों मार्ग इस रीतिसे विचार और मनन करनेवालेको सुगमतया समझमें आ सकते है। आधुनिक समयमेंही ये मार्ग प्रचलित हुए है । ऐसी बात नही है । अपितु वेदमें ये पूर्वसेही इस प्रकारसे है । इस ईशोपनिषद्के मंत्रोंसे ये तीनों मार्गा पाठक समझ सकेंगे । भक्तिमार्गका उत्तम उदाहरण हनुमान्जीका है। रामनामके जपसे अंतरंगकी पवित्रता करनी और श्रीरामके जगदुद्धारक कर्मोंका यथाशक्ति अपने ऊपर भार लेकर ईश्वरकीही बहिरंग उपासना करनी, ये भक्तिमार्गके द्विविध कार्य श्री हनुमान्जीको जीवनोको देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होते है । ऐसे और भी बहुत भक्त है । उनके चरित्रोंमें भी यही बात दिखाई देगी ।

विरोधका परिहार

ईशोपनिषद्में 'विद्या प्रकरण' और 'संभूति प्रकरण' है । उनमें 'विद्या अविद्या' और 'संभूति असंभूति' इन शब्दोंके अनेक भाष्यकारोंने अत्यन्त विविध अर्थ किए है। इसीलिए इनके अर्थ अन्तर्गत प्रमाणोंसे क्या होते हैं यह यहां दिखाना आवश्यक है । इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

प्रथम मंत्रमें **'ईशा वास्यमिदं सर्वं'** ऐसा वाक्य है । इसमें **'ईश और इदं'** ये दो पदार्थ ज्ञातव्य हैं और ये एक दूसरेसे भिन्न हैं । इनका ज्ञानक्षेत्र है ।

ईश	इदं
ईश	जगत्
ईश	अनीश
आत्मा	अनात्मा
आत्म-विद्या	अनात्म-विद्या
...विद्या	अ...विद्या

इस प्रकार ये शब्द प्रथम मंत्रके अनुरोधसे बनते हैं । येही शब्द विद्या अविद्या प्रकरणमें क्रमशः **'आत्मज्ञान और जगत्का विज्ञान'** इस अर्थमें आए है । पहिले मंत्रके पदोंका विचार करनेपर अगले मंत्रोंका स्पष्टीकरण सुगमतासे हो जाता है । और किसी भी प्रकारकी शंका नही रहती ।

इसी मंत्र भागके अगले **'जगत्यां जगत्'** ये शब्द जगत्का वर्णन करनेवाले है । जगत् कैसे है? इसका उत्तर है कि वह **'जगतीके आधारसे जगत्'** स्थित है । जगतोंके समूहका नामही 'जगती' है । 'संघके आधारसे व्यक्ति इस जगतमें रहती है' यह जगत्का नियम है । 'एक और उसकी जाति', यह जगत्का रूप है ।-

जगती	जगत्
सं+भूति	अ+संभूति
संघ	व्यक्ति

'सं+भू' धातुका अर्थ 'एक होकर रहना' है । एक होकर न रहनेके भावको **'अ+सं+भू'** धातु दर्शा रही है । एक होकर जमा करके रहनेकी एक कल्पना और अकेले अकेले रहनेकी दूसरी कल्पना, ऐसी दो कल्पनायें, 'संभूति और असंभूति' इन दो शब्दोंसे दिखाई गई । इन दोनोंकी जंजीर बनाकर उससे मनुष्यकी उन्नति किस प्रकार साधी जा सकती है, यह इस प्रकरणमें दर्शाया गया है ।

परस्परविरोधी शक्तियोंसे एक दूसरेके लिए सहायता कैसी प्राप्त करनी चाहिए, यह बात पाठक यहां अवश्य ध्यानपूर्वक देखें, क्योंकि जगत्में सर्वदा परस्पर विरोधी विचारकोंकी यदि कहीं भेट भी हो गई तो एक दूसरेके विचारोंकी एकता न होनेसे प्रायः झगडे होते है और उनके बढ जानेसे दोनोंका नाश हो जाता है । परन्तु यदि दोनों विरुद्ध शक्तियोंको एक केन्द्रमें परस्पर सहायक बनाया जाय, तो दोनोंका अनेक प्रकारसे कल्याण हो सकता है । विरोधी प्रतीत होनेवाली शक्तियोंको सहायक कैसे बनाना चाहिए, यह इस प्रकरणका विचार करनेवाला सुगमतासे समझ सकता है ।

असुर्य लोक ।

'असुर्य लोक' गाढ अंधकारसे व्याप्त है ऐसा तृतीय मंत्रमें कहा है । ये असूर्य लोक कौनसे है, इस विषयमें बहुतोंने बहुतसे तर्क किए है । कितनोंने 'सूर्य जहां नहीं है ऐसे देश' ऐसा अर्थ किया है । परन्तु यहांपर 'असुर्यं' शब्द है 'असूर्य' नहीं । दूसरे कुछ मानते हैं कि 'असुर' का अर्थ राक्षस है, और उनके देशका नाम 'असुर्यलोक'

है । परन्तु ये सब अर्थ ठीक प्रतीत नहीं होते । वेदमें 'असु+र' यह शब्द 'प्राणशक्ति **(असु+र)** देनेवाला' इस अर्थमें परमेश्वरके लिए आया है । वेदमें बहुतसे देवताओंके लिए 'असुर' शब्द इसी अर्थमें विशेषण रूपसे आया है । 'असुरत्व' शब्द (ऋ ग्वेदमें २८ बार), वाज. यजुर्वेदमें ३ बार, और अथर्वमें २ बार) उपरोक्त अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । 'असुर्य' शब्द वेदमें अन्य दूसरे किसी अर्थमें भी नही आया है और केवल 'परमेश्वरसे मिलनेवाले **(असु-र्य)** प्राणोंके बल' इसी एक अर्थमें आया है । प्राणके ऊपरके बौद्धिक, मानसिक आदि बल इससे भिन्न है ।

इस अर्थकी ठीक ठीक समझनेके लिए यहां थोडासा भिन्न रीतिसे विचार करना आवश्यक है । शरीरमें (असु) प्राणोंकी शक्तिको गति देनेवाला आत्मा है । उसके रहते हुए शरीरमें प्राण शक्ति कार्य करती रहती है और वह गया कि प्राणोंका कार्य बन्द होता है । इस दशामें शरीरमें (असु+र) प्राणशक्ति देनेवाला आत्माही है इसमें शंका नहीं । इस आत्माके जो बल शरीरमें दीखते है वे 'असुर्य' बल है । आत्मासे प्राप्त जो प्राणोंके बल है वे येही है । ये प्राणोंके बल इन्द्रियोंमें और शरीरमें संचार करते है, इसीलिए प्राणोंके बल इस स्थूल शरीरमें संचार करते है, इसीलिए दीखते है । रावणके शरीरमें जैसे ये असुर्य बल थे वैसेही रामके भी शरीरमें थे । केवल दोनोंमें भेद इतना था कि रावण अपनी शक्तिसे दूसरोंकी परतंत्र करके अपने शारीरिक भोग बढाता था और इसलिए राक्षस गिना जाता था और श्रीरामचंद्र समर्थ होते हुए भी स्वयं कष्ट उठाकर दुःखितोंके दुःखको दूर करनेके लिए आजन्म प्रयत्न करते रहे । अतः उनकी गणना देवोंमें हुई । असुर्य बल दोनोंमें होता हुआ भी एक देव और दूसरा राक्षस बन सकता है । इसका कारण उनकी आत्मिक शक्तिकी प्रवृत्तिमें भेद है । इसीलिए ही-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृत्ताः ।

'असुर्य बलसे प्रसिद्धि पाए हुए वे लोग हैं जो गाढ अंधकारसे व्याप्त है ।' इस मंत्रमें 'असुर्यलोकों' का 'गाढ अन्धकारसे व्याप्त' ऐसा विशेषण दिया है । वह इसीलिए कि प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले दुसरे असुर्य लोक भी है ।, उनका बोध इस मंत्रमें न हो । उनका वर्णन हम इसप्रकार कर सकते है-

असुर्या नाम ते लोका आत्माभासा प्रकाशिताः ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्मविदो नराः ॥

'असुर्य बलसे प्रसिद्ध वे लोग हैं कि जो आत्माके तेजसे प्रकाशित होते है । उनमें मरनेके बाद भी उनकी गणना होती है जो कोई आत्मज्ञानी नर है ।' (यह श्लोक हमने अपनी कल्पनासे बनाया है ।)

ऐसी अर्थापत्तिसे और विशेषणके अनुसंधानसे श्लोकका हम निर्माण कर सकते है, और इससे पता चलेगा कि असुर्य लोग जैसे राक्षसोंमें हो सकते है, ठीक वैसेही देवोंमें भी हो सकते है । रावण और राम दोनोंही असुर्य शक्तिसे युक्त थे, पर रावण अंधतमसे व्याप्त था और दूसरा आत्मप्रकाशसे पूर्ण था; क्योंकि प्रथमकी अन्तःकरण-प्रवृत्ति स्वार्थी भोग तृष्णासे अन्ध हुई थी और उसके विरुद्ध दूसरेकी शुद्धाचरण और जगदुद्धारकी प्रेरणासे प्रकाशित हुई थी । अन्तःशक्ति भी एंजिनकी तरह है । वह केवल गति देती है । एंजिनकी शक्तिसे काटनेके यंत्र जैसे फिरते है वैसेही जोडनेके यंत्र भी फिरते है । इसी प्रकार यहां भी समझना चाहिए ।

धनका अपहार ।

प्रथम मंत्रमें **'मा गृधः, कस्य स्विद् धनं'** । (मं. १) ऐसा एक चरण है । उसका,' (१) लोभ मत कर, (२) धन भला किसका है ?' ऐसा अर्थ हम पहिले कर आए है । कुछ लोग इस मंत्रखण्डके ऐसे दो भाग न मानते हुए 'कस्य स्विद् धनं मा गृधः ।' किसीके भी धनका लोभ मत रख, ऐसा अर्थ करते है । यद्यपि यह अर्थ बुरा नहीं है तथापि इस मंत्रमें जो **'स्वित्'** शब्द है वह प्रश्नार्थक है। 'क्या, भला' ऐसाही उसका अर्थ होता है । **'कस्य स्वित्'** इसका **'कस्य चित्'** ऐसा अर्थ नहीं होता । 'दूसरे किसीके भी धनपर लोभ मत रख' ऐसा अर्थ कई मानते है । दूसरेके धनका अपहार मत कर, दूसरोंको लूट करके अपने उपभोग मत बढा । यह एक उत्तमही उपदेश है पर इससे अर्थापत्तिद्वारा एक ध्वनि निकलती है कि 'स्वयं कष्ट उठाकर प्राप्त की हुई जो धन संपत्ति हो और जो पैत्रिक संपत्ति अपने भागमें आई हुई हो, वह दूसरेकी न होनेसे और केवल अपनी ही होनेसे उस सर्व संपत्तिका हम स्वयं चाहिए जैसा उपभोग करें, उसमें कोई भी आपत्ति नहीं ।' इस दृष्टिसे यह अर्थ धर्मकी दृष्टिमें थोडासा गौणही प्रतीत होता है । धर्म ऐसा कहता है कि जो कुछ हमारा धन हो उसका भी लोभ न करते हुए उसका यज्ञ करना चाहिए अर्थात् 'उसका विनियोग सज्जनोंके सत्कार करनेमें, समान लोगोंकी संगतिकरणमें

और जिनमें न्यूतना है उनकी न्यूनता हटाकर पूर्णता करनेके लिये दान देनेमें व्यय करना चाहिये ।' यज्ञ अर्थात् 'सत्कार-संगति-दानात्मक सत्कर्म ।' अपने धनका इन कार्योंमें उपयोग करना चाहिये ।' अपने धनका ऐसा उपयोग करना ही वास्तविक **(त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।** (मं. १)) है ऐसा माने, और ऐसा अपने धनका यज्ञ करके जो कुछ अवशिष्ट रहेगा उसका अपने लिए भोग करे । यज्ञशेष भक्षण धर्म है, यहां दूसरेके धनका लोभ नही करना चाहिये; इतनाही अर्थ है यह बात नहीं अपितु धनका भी लोभ नहीं करना चाहिये ऐसा यहां दर्शाया है। **(त्यक्तेन भुञ्जीथाः)** दानसे अपने धनके भोगकी आज्ञा है । **(मः गृधः)** धनका लोभ मत कर **(कस्य स्वित् धनं?)** किस एक व्यक्तिका भला धन है ? इसका विचार कर । ऐसा मंत्रका अर्थ सीधा दीखता है । विचारकको उसी समय पता लग जाएगा कि धन किसी एक व्यक्तिका नहीं है; क्योंकि जो व्यक्ति धन मेरा है ऐसा मानता है, वह व्यक्ति थोडेही समयमें सब धन यहींपर छोडकर चला जाता है । इसलिये धन किसी भी एक व्यक्तिका नहीं, यह सत्य है । धन सब जनताका, समाजका, संघका अथवा जातिका या समष्टिका है, व्यक्तिका नहीं । यद्यपि धन कुछ कालके लिए एक व्यक्तिके आधीन होता है, तथापि उस धनका वास्तविक स्वामी समाज है और वह व्यक्ति उस समाजके धनके एक भागका **'विश्वस्त पंच'** है । पंच अपने आधीन धनका अपने लिए उपभोग नहीं कर सकता, वह जिसका है उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है । ठीक इसी प्रकार यहां प्रत्येक व्यक्तिको अपने धनका यज्ञ करनेकाही अधिकार है, अर्थात् जनताके हितार्थ कर्तव्यकर्म करनेमेंही स्वर्च करनेका उसे अधिकार है । उस धनका अपने भोगके लिए स्वर्च करनेका उसे अधिकार नही ।

अग्निदेवता ।

ईशोपनिषद्के अन्तिम मंत्रमें 'अग्नि' देवताकी प्रार्थना है । वहां अग्नि शब्दसे किसका बोध लेना चाहिए इसका विचार करना चाहिए । बहुतसे लोग अग्नि शब्दसे 'यज्ञमें उपयोगमें आनेवाली आग' ऐसा यहां समझते है । यद्यपि अग्नि शब्दका ऐसा अर्थ है तथापि वह यहां इष्ट नहीं है। वह सम्पूर्ण सूक्त एकही देवताका वर्णन करता है । उसी एकही देवके लिए इन सूक्तमें निम्नलिखित नाम आए है + (मं. १) ईश, (मं. ४), एकं, तत्, एनत्, पूर्व, (मं. ५) तत्, (मं. ६-७) आत्मा, (मं. ८), सः, कविः, स्वयंभूः, (मं. ९) सत्यं, (मं. १६) पूषा, ऋषिः, यमः, सूर्यः, (मं. १८) अग्निः ।

इन शब्दोंपर विचार करनेपर 'सः, तत्, ईशः स्वयंभूः, कविः, सत्यः, पूषा, यमः, अग्निः, आत्मा' इत्यादि सब नाम एकही परमात्माके है ऐसा स्पष्ट दीखता है । एक सूक्तमें एक देवताकेही गुण दिखानेके लिए ये सब शब्द आए है । 'आत्मा' के अतिरिक्त इस सूक्तका अन्य कोई देवता आजतक किसीने भी नहीं माना है । अतः अग्नि आदि शब्द एक आत्माकेही वाक इस सूक्तमें आए हैं यह निर्विवाद है । यही आशय निम्न ऋचा भी दर्शा रही है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विपा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं
मातरिश्वानमाहुः ॥ (ऋ. १।१६४।४६)

इस मंत्रमें एक आत्माके इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा ये नाम हैं ऐसा कहा है । इस वेदमंत्रको देखनेसे अग्नि, यम आदि शब्द उस एक अद्वितीय स्वयंभू परमात्माकेही वाचक है इस विषयमें शंका नहीं रहेगी ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥

●●●

वाजसनेयि-शुक्ल-यजुर्वेद-संहितायः कण्डिकानां

।। वर्णानुक्रम-सूची ।।

अँशुना ते अँशुः २०,२७
अँशुरँशुष्टे देव ५,७
अँशुश्च मे रश्मिश्च १८,१९
अक्रन्कर्म कर्मकृतः ३,४७
अक्रन्ददग्नि स्तनयन् १२,६; २१; ३३
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव ३,५१
अक्षराजाय कितवं ३०,१८
अग्न आयूँ वि पक्स १९,३८;३५,१६
अग्न इन्द्र वरुण ३३,४८
अग्नये कव्यवाहनाय २,२९
अग्नये कूटरून् २४,२३
अग्नये गायत्राय २९,६०
अग्नये गृहपतये १०,२३
अग्नये त्वा मह्यं ७,४७
अग्नेऽनीकवते २४,१६; २९,५९
अग्नये पीवानं ३०,२१
अग्नये स्वाहा २२,६,२७
अग्ना इ पत्नीवन्त्सजः ८,१०
अग्नावग्निश्चरति ५,४
अग्निं युनज्मि शवसा १८,५१
अग्निँ स्तोमेन बोधय २२,१५
अग्निँ हृदयेन ३९,८
अग्निँ होतारं मन्ये १५,४७
अग्निं सं मन्ये यो १५,४१
अग्निं दूतं पुरो दधे २२,१७
अग्निः पशुरासीत् २३,१७
अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिः १०,२९
अग्निः प्रियेषु धामसु १२,११७
अग्निमद्य होतारम् २१,५९; २८, २३; ४६
[illegible] जन्मना १८,३६
[illegible] प्रणम् ९,३१
[illegible] पवमानः २६,९
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः ३, ९
अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् १३,४०
अग्निर्देवता वातो १४,२०
अग्निर्मूर्धा दिवः ३, १२, १३, १४, १५ २०
अग्निर्वृत्राणि जङ्गनद् ३३,९
अग्निश्च पृथिवी च २६,१
अग्निश्च म आपश्च १८,१४
अग्निश्च म इन्द्रश्च १८,१६
अग्निश्च मे धर्मश्च १८,२२
अग्निष्वात्ताः पितरः १९,५९
अग्निष्वात्तानृतुमतो १९,६१
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा १७,१६
अग्नीषोमयोरुज्जितिम् २,१५
अग्ने अच्छा वदेह नः ९,२८
अग्ने अंगिरः शतं ते १२,८
अग्ने गृहपते सुगृहपतिः २,२७
अग्ने जातान् प्र णुदा १५,१
अग्ने तमद्याश्वं न १५,४४; १७,७७
अग्ने तव श्रवो क्यों १२,१०६
अग्ने त्वं नो अन्तम ३, २५; १५, ४८; २५, ४७
अग्ने त्वं पुरीष्यो १२,५९
अग्ने त्वँ सु जागृहि ४,१४
अग्नेऽदच्छायो शीतम २,२०
अग्ने दिवो अर्णमच्छा १२,४९
अग्ने नय सुपथा ५, ३६, ७, ४३; ४०,१६
अग्नेः पक्षतिर्वायोः २५,४
अग्ने पत्नीरिहा वह २६,२०
अग्ने पवस्व स्वपा ८,३८
अग्ने पाथक रोचिषा १७,८
अग्ने प्रेहि प्रथमो १७,६९
अग्ने ब्रह्म गृभ्णीध्व १,१८
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि १२,७
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः १२,४८
अग्ने यत्ते शुक्रं १२,१०४
अग्ने युक्ष्वा हि ये १३,३६
अग्नेरनीकमप आ ८,२४
अग्नेर्जनित्रमसि ५, २
अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया १४,२४
अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य ६,२४
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा २,७
अग्ने वाजस्य गोमत १५,३५
अग्ने वेहोत्रं वेर्दूत्यम् २,९
अग्ने व्रतपते व्रतम् १,५; २,२८
अग्ने व्रतपास्त्वे ५, ६; ४०
अग्ने शर्ध महते ३३,१२
अग्ने सहस्व पृतना ९,३७
अग्ने सहस्राक्ष १७,७१
अग्नेस्तनूरसि वाचो १,२५
अग्नेस्तनूरसि विष्णवे ५,१
अग्ने स्वाहा कृतुहि २७,२२
अग्रेणीरसि स्वावेश ६,२
अग्ने बृहन्नुषस्राम् १२,१३
अङ्गान्यात्मन् भिषजा १९,९३
अङ्गिरस्रो नः पितरो १९,५०
अचिक्रदद् वृषा हरिः ३८,२२
अच्छायमेति शवसा २७,१४
अच्छिन्नस्य ते देव ७,१४
अजस्रमिन्दुमरुषं १३,४३
अजारे पिशङ्गिला २३,५६
अजीजनो हि पवमान २२,१८
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट १३,५१
अति निहो अति स्रिधो २७,६
अति विश्वाः परिष्ठा १२, ८४

अत्यन्यॉ अगां नान्यॉ ५,४२
अत्र पितरो मान्यध्वं २,३१
अत्रा ते रूपमुत्तमम् २९, १८
अथैतानष्टौ विरूपाना ३०,२२
अदब्धेभिः सवितः ३३,६९;८४
अदितिर्द्यौरदितिः २५,२३
अदितिष्ट्वा देवी ११,६१
अदित्यास्त्वगस्यादेत्यै ४,३०
अदित्यास्त्वा पृष्ठै १४,५
अदित्यासत्वा मूर्धन्ना ४,२२
अदित्यै रास्नासि १,३०, ११,५९ ३८,३
अदित्यै व्युन्दनमसि २,२
अदृश्रमस्य कतवो ८,४०
अद्भयः क्षीरं व्यपिवत् १९,७३
अद्भयः सम्भृतः पृथिव्यै ३१,१७
अद्भयः स्वाहा वार्भ्यः २२,२५
अद्या देवा उदिता ३३,४२
अद्या यथा नः पितरः १९,६९
अधा ह्यग्ने क्रतोः १५,४५
अधि न इन्द्रैषां ३३,४७
अधिपत्न्यसि बृहती १५,१४
अध्यवोचदधिवक्ता १६,५
अध्वर्ये अद्रिभिः २०,३१
अनड्वान्वयः पंक्तिः १४,१०
अनड्वाहमन्वारभाहे ३५,१३
अनाधृष्टा पुरस्तात् ३७,१२
अनाधृष्यो जातवेदाः २७,७
अनु ते शुष्मं तुरयन्तम् ३३,६७
अनुत्तमा ते मघवन् ३३,७९
अनु त्वा माता मन्यताम् ४,२०
अनु त्वा रथो अनु २९,१९
अनु नोऽद्यानुमतिः ३४,९
अनु वीररैनु पुष्यास्म २६,१९
अनेजदेकं मनसो ४०,४
अन्तरग्ने रुचा त्वम् १२,१६
अन्तरा मित्रावरुणा २९,६
अन्तश्चरति रोचनास्य ३,७
अन्तस्ते द्यावापृथिवी ७,५
अन्धं तमःप्र विशन्ति ४०, ९, १२
अन्ध स्थान्धो वो ३,२०
अन्नपतेऽन्नस्य नो ११, ८३
अन्नात्पतिरस्रुतो रसे १९, ७५
अन्यदेवाहुर्विद्याया ४०,१३
अन्यदेवाहुः सम्भवादू ४०,१०
अन्यवापोऽर्धमासा २४,३७
अन्या वो अन्याभवतु १२,८८
अन्वग्निरुषसामग्रम् ११,१७
अन्विदनुमते त्वं ३४, ८
अपश्यं गोपामनि ३७, १७
अपाँ रसमुद्वयसँ ९, ३
अपाधमप किल्बिषम् ३५,११
अपां गम्भन्त्सीद मा १३,३०
अपातामश्विना धर्मम् ३८,१३
अपाधमदभिशस्तीः ३३,९५
अपां त्वेमन्त्सादयाभि १३,५३
अपामिदं न्ययनँ १७,७
अपां पृष्ठमसि योनिः ११,२९;१३,२
अपां पेरुरस्यापो ६,१०
अपां फेनेन नमुचेः १९,७१
अपार रुं पृथिव्यै १,२६
अपि तेषु त्रिषु पदेषु २३,५०
अपेत वीत वि च १२,४५
अपेतो यन्तु पणयो ३५,१
अपो अद्यान्वचारिषँ २०,२२
अपो देवा मधुमतीः १०,१
अपो देवीरुप सृज ११,३८
अप्नस्वतीमश्विना ३४,२९
अप्स्वग्ने सधिष्टव १२,३६
अप्स्वन्तरमृतमप्सु ९,६
अवोध्यग्निः समिधा १५,२४
अभि गोत्राणि सहसा १७,३९
अभि त्यं देवँ सविता ४,२५
अभि त्वा शूर नोनुमो २७,३५
अभिधा असि भुवनम् २२,३
अभि प्रवन्त समनेव १७,९६
अभिभूरस्येतास्ते १०,२८
अभि यज्ञं गृणीहि २६,२१
अभीमं महिमा दिवं ३८,१७
अभी षु णः सखीनाम् २७,४१;३६,६
अभ्यर्षत सुष्टुतिं १७, ९८
अभ्या दधामि समिधम् २०,२४
अभ्या वर्तस्व पृथिवि १२,१०३
अभ्रिरसि नार्यसि ११,१०
अमीषां चित्तं प्रति १७,४४
अमुत्रभूयादध २७,९
अमेव नः सुहवः २६,२४
अयं वां मित्रावरुणा ७,९
अयं वेनश्चोदयत् ७,१६
अयँ सहस्रमृषिभिः ३३,८३
अयँ सो अग्निर्यस्मिन् १२,४७
अर्थ ते योनिर्ऋत्वियो ३,१४; १२,५२,१५,५६
अयं दक्षिणा विश्वकर्मा १३,५५; १५,१६
अय नो अग्निर्वरिव ५,३७; ७,४४
अयमग्निः पुरीध्यों ३,४०
अयमग्निः सहस्रिणो १५,२१
अयमग्निर्गृहपतिः ३,३९
अयमग्निवीरतभो १५,५२
अयमिह प्रथमो धायि ३,१५; १५,२६;३३,६
अयमुत्तरात्संयद् १५,१८
अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य १५,१९
अयं पश्चाद्विश्वव्यचा १३,५६,१५,१७
अयं पुरो भुवस्तस्य १३,५४
अयं पुरो हरिकेशः १५,१५
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा १०,३
अर्ध-ऋचैरुक्थानाँ १९,२५
अर्धमासाः परूँषि २३,४१
अर्मेभ्यो हस्तिपं ३०,११
अर्यमणं बृहस्पति ९,२७
अर्वाश्चो अद्या भवता ३३,५१
अवतत्य धनुष्टवँ १६, १३
अधपतन्तीरवदन् १२, ९१
अवभृथ निचुम्पुण ३, ४८; ८, २७
अव रुद्रमदीमह्यव ३, ५८

अवपृष्टा परा पत १७,४५
अविर्न मेषो नांसि १९,९०
अवेष्टा एन्दशूकाः १०,१०
अवोचाम कवये १५,२५
अश्मन्नूर्ज पर्वते १७,१
अश्मन्वती रीयते ३५,१०
अश्मा च मे मृत्तिका १८,१३
अश्याम तं काममग्ने १८,७४
अश्वत्थे वो निषदनं १२,७९;३५,४
अश्वस्तूपरो गोमृगः २४,१
अश्वस्य त्वा वृष्णः ३७,९
अश्वावतीँ सोमावतीम् १२,८१
अश्वावतीर्गोमतीर्न ३४,४०
अश्विनकृतस्य ते २०,३५
अश्विना गोभिरिन्द्रियम् २०,७३
अश्विना धर्म पातँ ३८,१२
अश्विना तेजसा चक्षुः २०,८०
अश्विना नमुचेः सुतँ २०,५९
अश्विना पियतां मधु २०,९०
अश्विना भेषजं मधु २०,६४
अश्विना हविरिन्द्रियं २०,६७
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं १९,८९
अश्विभ्यां पच्यस्व १०,३१
अश्विभ्यां पिन्दस्व ३८,४
अश्विभ्यां प्रातःसवनम् १९, २६
अश्वो घृतेन त्मन्या २९,१०
अषाढं युत्सु पृतनासु ३४,२०
अषाढांऽसि सहमाना १३,२६
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः ३४,२४
असंख्याता सहस्राणि १६,५४
असवे स्वाहा वसवे २२,३०
असि यमो अस्यादित्यो २९,१४
असुन्वन्तमयजमानम् १२,६२
असुर्या नाम ते ४०,३
अस्त्रौ यस्तास्त्रो अरुण १६,६
असौ या सेना मरुतः १७,४७
असौ योऽवसर्पति १६,७
अस्कन्नमद्य देवेभ्याः २,८
अस्ताव्यग्निर्नराँ १२,२९
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु १७,४३
अस्मात्त्वमधि जातो ३५,२२
अस्मिन् महत्यर्णवे १६,५५
अस्मे रुद्रा मेहना ३३,५०
अस्मे वो अस्त्विन्द्रियम् ९,२२
अस्य प्रत्नामनु द्युतँ ३,१६
अस्याजरासो दमा ३३,१
अस्येदिन्द्रो वावृधे ३३,९७
अहः केतुना जुषताँ ३७,२१
अहरहरप्रयावं ११,७५
अहानि शं भवन्तु ३६,११
अहाव्यग्ने हविरास्ये २०,७९
अहिरिव भोगैः पर्येति २९,५१
अह्ने पारावतान् २४,२५
अह्नुतमसि हविर्धानम् १,९
आकूतिमग्निं प्रयुजँ ११,६६
आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये ४,७
आ कृष्णेन रजसा ३३,४३, ३४,३१
आ क्रन्दय बलमोजो २९,५६
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीम् ११,१९
आगत्य वाज्यध्वानँ ११,१८
आ गन्म विश्ववेदसम् ३,३८
आग्नेयः कृष्णग्रीवः २९,५८
आग्रयणश्च मे १८,२०
आ धा ये अग्निमिन्धते ७,३२
आच्या जानु दक्षिणतो १९,२
आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्द १५,५
आ जङ्गन्ति द्यान्वेषां २९,५०
आ जिघ कलशं ८,४२
आजुह्वान ईडयो वन्द्यश्च २९,२८
आजुह्वानः सुप्रतीकः १७,७३
आजुह्वाना सरस्वती २०,५८
आ तत्त इन्द्रायवः ३३,२८
आ तं भज सौश्रवसा १२,२७
आतिथ्यरूपं मासरं १९,१४
आतिष्ठन्तं परि ३३, २२
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथे ८,३३
आ तू न इन्द्रं ३३,६५
आ ते वत्सो मनो १२, ११५
आत्मन्नुपस्ये न वृकस्य १९, ९२
आत्मने मे वर्चोदा ७, २८
अत्मानं ते मनसा २९, १७
आ त्वा जिघर्मि मनसा ११, २३
आ त्वाऽहार्षमन्तरभूः १२, ११
आदित्यं गर्भ पयसा १३, ४१
आदित्यैनों भारती २९, ८
आधत्त पितरो गर्भ २,३३
आ न इडाभिर्विदये ३३, ३४
आ न इन्द्रो दूरादा २०, ४८
आ न इन्द्रो हरिभिः २०, ४९
आ न एतु मनः ३, ५४
आ नासत्या त्रिभिः ३४, ४७
आ नो नियुद्भिः शतिनी २७, २८
आ नो भद्राः क्रतवो २५,१४
आ नो मित्रावरुणा २१, ८
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं ३३, ८५
आ नो यज्ञं भारती २९, ३३
आन्त्राणि स्थालीर्मधु १९, ८६
आपतये त्वा परि ५, ५
आपये स्वाहा स्वापये ९, २०
आ पवस्व हिरण्यवत् ८, ६३
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो ३३, १८
आपो अस्मान्मातरः ४,२
आपो देवीः प्रति गृभ्णीत १२, ३५
आपो ह यद्बृहतीः २७, २५
आपो हि ष्ठा ११, ५०; ३६, १४
आ प्यायस्व मदिन्तम १२, ११४
आ प्यायस्व समेतु १२, ११२
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो २२, २२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिः २०, ५३
आ मा वाजस्य पसवो ९, १९
आमूरज प्रत्यावर्तय २९, ५७
आयं गौः पृश्निरक्रमीत् ३, ६
आ यदिषे नृपतिं ३३, १९
आ यन्तु नः पितरः १९, ५८
आ यातमुप भूषतं ३३, ८८
आ यात्विन्द्रोऽवस २०, ४७
आयास्राय स्वाहा ३९, ११

आयूमें पाहि प्राणं मे १४, १७
आयुर्यज्ञेन कल्पतां ९, २१, १८, २९; २२, ३३
आयुष्मानग्रे हविषा ३५, १७
आयुष्यं वर्चस्यः ३४, ५०
आयोएवा सदने सादयामि १५, ६३
आ रात्रि पार्थिव ँ ३४, ३२
आ रोदसी अपृणदा ३३, ७५
आ वाचो मध्यमरुहद् १५, ५१
आ वायो भूष शुचिषा ७, ७
आर्विमर्या आवितो १०, ९
आ विश्वृतः प्रत्यश्वं ११, २४
आ वो देवास ईमहे ४, ५
आशुः शिशानो वृषभो १७, ३३
आशुस्त्रिवृद्वान्तः १४, २३
आ श्रावयेति १९, २४
आसन्दी रूप ँ राजा १९, १६
आसीनासो अरुणीनाम् १९, ६३
आ सुते सिञ्चत ३३, २१
आ सृष्वयन्ती यजते २९,३१
आऽहं पितृन्त्सृवि १९, ५६
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः ३४, १८
इड एह्यदित एहि ३, २७; ३८, २
इडाभिरग्निरीड्यः २१, १४
इडाभिर्मक्षानाप्रोति १९, २९
इडामग्ने पुरुद ँ स ँ १२, ५१
इडायास्त्वा पदे ३४, १५
इडे रन्ते हव्ये काम्ये ८, ४३
इदं विष्णुर्वि चक्रमे ५, १५
इद ँ हविः प्रजननं १९, ४८
इं पितृभ्यो नमो १९, ६८
इदमापः प्र वहत ६, १७
इदमुत्तरात् स्वस्तस्य १३, ५७
इदं मे ब्रह्म च ३२, १६
इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा १८, ५३
इन्द्र आसां नेता १७, ४०
इन्द्रं दुरः कवष्यो २०, ४०
इन्द्रं दैवीर्विशो १७, ८६
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् १२, ५६; १५, ६१; १७, ६१
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ २०, ५१
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन १९, ८५
इन्द्र गोमन्निहा याहि २६, ४
इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः ५, ११
इन्द्र मरुत्व इह पाहि ७, ३५
इन्द्रमिद्धरी वहतो ८, ३५
इन्द्रवायू इमे सुता ७, ८; ३३, ५६
इन्द्रवायू बृहस्पति ३३, ४५
इन्द्रवायू सुसन्दृशा ३३,८६
इन्द्रश्च मरुतश्च ८, ५५
इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च ८, ३७
इन्द्रस्य कोडोऽदित्यै २५, ८
इन्द्रस्य वज्रो मरुताम् २९, ५४
इन्द्रस्य वज्रोऽसि ९, ५; १०, २१
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य १७, ४१
इन्द्रस्य रूपमृषभो १९, ९१
इन्द्रस्य स्यूरसि ५, ३०
इन्द्रस्यौज स्थ ३७, ६
इन्द्राग्नी अपादियं ३३, ९३
इन्द्राग्नी अव्यथमाना १४, ११
इन्द्राग्नी आ गत ँ सुतं ७, ३१
इन्द्राग्नी मित्रावरुणा ३३, ४९
इन्द्राग्न्योः पक्षतिः २५; ५
इन्द्राय त्वा वसुमते ६, ३२; ३८, ८
इन्द्रा याहि चित्रमानो २०, ८७
इन्द्रा याहि तूतुजान २०, ८९
इन्द्र याहि धियेषितो २०, ८८
इन्द्रा याहि वृत्रहन् २६, ५
इन्द्रायेन्दु ँ सरस्वती २०, ५७
इन्द्रेमं प्रतरां नय १७, ५१
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो ३३, २५
इन्द्रो विश्वस्य राजति ३६, ८
इन्द्रो वृत्रमवृणोत् ३३, २६
इन्धानास्त्वा शत ँ हिमा ३, १८
इम ँ साहस्र ँ शतधारम् १३, ४९
इम ँ स्तनमूर्जस्वन्तं १७, ८७
इमं जीवेभ्यः परिधिं ३५, १५
इमं देवा असपत्न ँ ९, ४०; १०, १८
इमं नो देव सवितः ११, ८
इमं मा हि ँ सीरेकशफं १३, ४८
इमं मा हिं ँ सीर्द्विपादं १३, ४७
इमं मे वरुण श्रुधी २१, १
इममूर्णायुं वरुणस्य १३, ५०
इमा उ त्वा पुरुवसो ३३, ८१
इमा गिर आदित्येभ्यो ३४, ४
इमा ते वाजिन्नवमा २९, १६
इमा नु कं भुवना २५, ४६
इमां ते धियं प्र भरे ३३, २९
इमामगृभ्णन् रशना २२, २
इमा मे अग्न इष्टका १७, २
इमा रुद्राय तवसे १६, ४८
इमौ ते पक्षावजरौ १८, ५२
इयं वेदिः परो अन्तः २३, ६२
इयत्यग्र आसीत् ३७, ५
इयदस्यायुरसि १०, २५
इयं ते यज्ञिया तनूः ४, १३
इयमुपरि मतिस्तस्यै १३, ५८
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व १२, १०९
इरावती धेनुमती ५, १६
इषमूर्जमहमित १२, १०५
इषश्चोर्जश्च शारदौ १४, १६
इषिरो विश्वव्यचा १८, ४१
इषे त्वोर्जे त्वा १, १
इषे पिन्वस्वोर्जे ३८, १४
इषे राये रमस्य १३, ३५
इष्कर्तारमध्वरस्य १२, ११०
इष्कृतिर्नाम वो माता १२, ८३
इष्टो अग्निराहुतः १८, ५७
इष्टो यज्ञो भृगुभिः १८, ५६
इह रतिरिह रमध्वम् ८, ५१
इहैवाग्ने अधि धारया २७, ४
ईडितो देवैर्हरिवाँ २०, ३८
ईड्यश्चासि वन्द्यश्च २९, ३
ईदृक्षास एतादृक्षास १७, ८४

ईदृङ् चान्यादृङ् च १७, ८१
ईर्मान्तासः शिलिक २९, २१
ईक्षानाय परस्वत २४, २८
ईशा वास्यमिदँ ४०, १

उक्ताः सश्चरा एताः २४, १५, १७, १९
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा ३३, ७६
उक्षा समुद्रो अरुणः १७, ६०
उखां कृणोतु शक्त्या ११, ५७
उग्रँल्लोहितेन मित्रँ ३९, ९
उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तः ३९, ७
उग्रा विधनिना ३३, ६१
उच्चा ते जातमन्धसो २६, १६
उच्छुष्मा ओषधीनां १२, ८२
उत नोऽहिर्बुध्न्यः ३४, ५३
उत स्मास्य द्रवतः ९, १५
उत्तानायामव भरा ३४, १४
उत्तिष्ठन्नोजसा सह ८, ३९
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ३४, ५६
उतेदानी भगवन्तः ३४, ३७
उत्क्राम महते सौभगाय ११, २१
उत्थाय बृहती भव ११, ६४
उत्सक्थ्या अव गुदं २३, २१
उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रक्षुदे ३०, १०
उदकमीद् द्रविणोदा ११, २२
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या १३, १२
उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं ५, २७
उदीचीमा रोह १०, १३
उदीरतामवर १९, ४९
उदु तिष्ठ स्वध्वरावा ११, ४१
उदुत्तमं वरुण पाशम् १२, १२
उदु त्यं जातवेदसं ७, ४१; ८, ४१; ३३, ३१
उदु त्वा विश्वे देवा १२, ३१; १७, ५३
उदेनमुत्तरां नयाग्ने १७, ५०
उदेषां बाहू अति ११, ८२
उद्ग्राभं च निग्राभं १७, ६४
उद्धर्षय मधवन् १७, ४२
उद्बुध्यस्वाग्ने पति १५, ५४; १८, ६१
उद्वयं तमसस्परि २०, २१; २७, १०; ३५, १४; ३८, २४
उन्नत ऋषभो वामनः २४, ७
उप ज्मन्नुप वेतसे १७, ६
उप त्वाऽग्ने हविष्मतीः ३, ४
उप नः सूनवो गिरः ३३, ७७
उपप्रयन्तो अध्वरं ३, ११
उप प्रागाच्छसनं २९, २३
उप प्रागात्परमं २९, २४
उप प्रागात्सुमन्मे २५, ३०
उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवो ७, २५
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये २३, २; ४
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पति ८, ९
उपयामगृहीतोऽसि मधवे ७, ३०
उपयामगृहीतोऽसि सावित्रो ८, ७
उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मा ८, ८
उपयामगृहीतोऽसि हरिः ८, ११
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय ७, २२
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये ८,४७
उपयामगृहीतोऽस्यन्तः ७, ४
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां २०, ३३
उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणो ७, २०
उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यः ८, १
उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं १९, ८
उप श्वासय पृथिवीम् ९, ५५
उपहूता इह गाव ३, ४३
उपहूताः पितरः १९, ५७
उपहूतो द्यौष्पितोप २,११
उपह्वरे गिरीणाँ २६,१५
उपावसृज त्मन्या २९, ३५
उपावीरस्युप देवान् ६, ७
उपास्मै गायता नरः ३३, ६२
उभा पिवतमश्विना ३४, २८
उभाभ्यां देव सवितः १९, ४३
उभा वामिन्द्राग्नी ३, १३
उभे सुश्चन्दर सर्पिषो १५, ४३
उरु विष्णो वि क्रमस्व ५,३८; ४१
उशन्तस्त्वा नि धीमहि १९, ७०
उशिक्त्वं देव सोमाग्नेः ८, ५०
उशिक्यावको अरतिः १२, २४
उशिगसि कविः ५, ३२
उषस्तचित्रमा भर ३४, ३३
उषासानक्ताश्विना २०, ६१
उषासानक्ता बृहती २०, ४१
उषे यह्वी सुपेशसा २१, १७
उस्रावेतं धूर्षाहौ ४, ३३

ऊर्क् च मे सूनृता १८,९
ऊर्गस्याजिरस्यूर्णम्रदा ४, १०
ऊर्जं वहन्तीरमृतं २, ३४
ऊर्जो नपाज्जातवेदः १२, १०८
ऊर्जो नपातँस २७, ४४
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ११, ४२
ऊर्ध्वगेनमुच्छ्रयताद्गिरो २३, २७
ऊर्ध्वा अस्य समिधो २७, ११
ऊर्ध्वामा रोह १०, १४
ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय २३, २६
ऊर्ध्वो भव प्रति विद्या १३, १३

ऋवसामयोः शिल्पे ४, ९
ऋचं वाचं प्र पद्ये ३६, १
ऋचे त्वा रुचे त्वा १३, ३९
ऋचो नामास्मि यजूँसि १८, ६७
ऋजवे त्वा साधवे ३७, १०
ऋजीते परि वृङ्धि २९, ४९
ऋतँ सत्यमृतँ ११, ४७
ऋतजिश्व १७, ८३
ऋतं च मेऽमृतं १८, ६
ऋतये स्तेनहृदयं ३०, १३
ऋतवस्त ऋतुथा २३, ४०
ऋतवस्ते यज्ञं २६, १४
ऋतव स्थ ऋतावृधा १७, ३
ऋतश्च सत्यश्च १७, ८२
ऋतावानं महिषं १२, १११
ऋतावानं वैश्वानरम् २६, ६
ऋताषाडृतधामाऽग्निः १८, ३८
ऋतुयेन्द्रो वनस्पतिः २०, ६५
ऋधगित्था स मर्त्यः ३३, ८७

एकया च दशभिश्च २७, ३३
एकयाऽस्तुवत प्रजा १४, २८
एकस्त्वष्टुरश्वस्या २५, ४२
एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याँ २२, ३४
एका च मे तिस्रश्च १८, २४
एजतु दशमास्यो गर्भो ८, २८
एण्यह्नो मण्डूको मूषिका २४, ३६
एतँ सधस्थ परि १८, ५९
एतं जानाथ परमे १८, ६०
एतते रुद्रावसन्तेन ३, ६१
एता अर्षन्ति हृद्यात् १७, ९३
एता उ वः सुभगा २९, ५
एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा २४, ८
एतावद्रूपं यज्ञस्य १९, ३१
एतावानस्य महिमा ३१, ३
एतं ते देव सवितः २, १२
एदमगन्म देव ४, १
एधोऽस्येधिषीमहि २०, २३; ३८, २५
एना विश्वान्यर्य आ २६, १८
एना वो अग्निं नमसो १५, ३२
एभिर्नो अर्कैर्भवा १५, ४६
एवश्छन्दो वरिषः १५, ४
एवेदिन्द्रं वृषणं २०, ५४
एव छागः पुरो २५, २६
एव ते गायत्रो भाग ४, २४
एष ते निर्ऋते भागः ९, ३५
एष ते रुद्र भागः ३, ५७
एष व स्तोमो मरुतः ३४, ४८
एष स्य वाजी क्षिपणिं ९, १४
एषा ते अग्ने समित्तया २, १४
एषा ते शुक्र तनूः ४, १७
एषा वः सा सत्या ९, १२
एषो ह देवः प्रदिशो ३२, ४
एद्दयू षु ब्रवाणि २५, १३

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अग्ने ६, २०

ओजश्च मे सहश्च १८, ३
ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे ७, ३३
ओषधयः प्रति गृभ्णीत ११, ६८
ओषधयः समवदन्त १२, ९६
ओषधीः प्रतिमोदध्वं १२, ७७
ओषधीरिति मातः १२, ७८

ककुमँ रूपं वृषभस्य ८, ४९
कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि २३, ५७
कदा चन प्र युच्छसि ८, ३
कदा चन स्तरीरसि ३, ३४; ८, २
कन्या इव बहतुम् १७, ९७
कया त्वं न ऊत्याभि ३६, ७
कया नश्चित्र आ २७, ३९; ३६, ४
कल्पन्तां ते दिशः ३५, ९
कवध्यो न व्यचस्वतीः २०, ६०
कः स्विदेकाकी चरति २३, ९; ४५
कस्त्वा छ्यति कस्त्वा २३, ३९
कस्त्वा युनक्ति स त्वा १, ६
कस्त्वा विमुञ्चति २, २३
कस्त्वा सत्यो मदानां २७, ४०; ३६, ५
का ईमरे पिशङ्गिला २३, ५५
काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ति १३, २०
कामं कामदुघे धुक्ष्व १२, ७२
काय स्वाहा कस्मै २२, २०
कार्षिरसि समुद्रस्य ६, २८
काव्ययोराजानेषु ३३, ७२
का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः २३, ११; ५३
किँ स्वित्सूर्यसमं २३, ४७
किँ स्विदासीदधि १७, १८
किँ स्विद्धनं क उ स १७, २०
कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व १, १६
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः ३३, २७
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता १९, ८७
कुर्वन्नेवह कर्माणि ४०, २
कुलायिनी घृतवती १४, २
कुविदग्न यवमन्तो १०,३२; १९,६,२३,३८
कृणुध्व पाजः प्रसितिं १३, ९
कृष्णग्रावा आग्नेयाः २४, ६; ९; १४
कृष्णा भौमा धूम्रा २४, १०
कृष्णोऽस्याव्ररेष्ठो २, १
केतुं कृण्वन्नकेतवे २९, ३७
केष्वन्तः पुरुष आ २३, ५१
को अस्य वेद २३, ५९
कोऽदात्कस्मा अदात् ७, ४८
कोऽसि कतमोऽसि ७, २९; २०, ४
क्रमध्वमग्निना १७, ६५
क्रव्यादमग्निं प्र ३५, १९

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ३८,१ ९
क्षत्रस्य योनिरसि २०, १
क्षत्रस्योल्बमसि १०, ८
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सँ २७, ५
क्षपो राजन्नुत त्मना १५, ३७

स्वङ्गो वैश्वदेवः श्वा २४, ४०

गणानां त्वा गणपतिँ २३, १९
गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः २, ३
गर्भो अस्योधीनां १२, ३७
गर्भो देवानां पिता ३७, १४
गायत्रं छन्दोऽसि ३८ ,६
गायत्री त्रिष्टुब्जगती २३, ३३
गायत्रेण त्वा छन्दसा १, २७
गाव उपावतावतं ३३, १९, ७१
गृहा मा विभति मा ३, ४१
गोत्रभिदं गोविदं १७, ३८
गोभिर्न सोममश्विना २०, ६६
गोमदू षु णासत्या २०, ८१
ग्रहा ऊर्जाहुतयो ९, ४
ग्रीष्मेण ऋतुनो देवा २१, २४
धर्मैतत्ते पुरीषं ३८, २१
घृतं घृतपावानः ६, १९
घृतं मिमिक्षे घृतम् १७, ८८
घृतवती भुवनानाम् ३४, ४५
घृताची स्थो धुर्यौ २, १९
घृताच्यसि जुहूर्नात्रा २, ६
घृतेन सीता मधुना १२, ७०
घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाँ ६, ११
घृतेनाञ्चन्स्वं पथो २९, २

चक्षुषः पिता मनसा १७, २५
चतस्रश्च मेऽष्टौ च १८, २५
चतुः स्रक्तिर्नाभिः ३८, २०
चतुस्त्रिक्तिर्नाभिः ३८, २०
चतुस्त्रिँ शत्तन्तवा ८, ६१
चतुस्त्रिँ शद्वाजिनो २५, ४१
चत्वारि शृङ्गा त्रयो १७, ९१
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा ३३, ९०
चन्द्रमा मनसा जातः ३१, १२
चित्ति जुहोमि मनसा १७, ७८
चित्पतिर्मा पुनातु ४, ४-
चित्रं देवानामुदगा ७, ४२; १३, ४६
चिदसि तया देवतया १२, ५३
चिदसि मनासि धीरसि ४, १९
चोदयित्री सूनृतानां २०, ८५

जनयत्यै त्वा संयौमि १, २२
जनस्य गोपा अजनिष्ट १५, २७
जनिष्ठा उग्रः सहसे ३३, ६४
अवी यस्ते वाजिन्निहितो ९, ९
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो २०, ६
जीमूस्येव भवति २९, ३८
जुषाणो बर्हिर्हरिवान् २०, ३९
ज्येष्ठपं च म आधिपत्यं १८, ४
ज्योतिरसि विश्वरूपं ५, ३५

तं यज्ञं बर्हिषि ३१, ९
तं वो दस्ममृतीषहं २६, ११
त आऽयजन्त १७, २८
तच्चक्षुर्देवहितं ३६, २४
ततो विरोडजायत ३१, ५
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा १८, ४९; २१, २
तत्सवितुर्वरेण्यं ३, ३५,; २२, ९; ३०, २
तत्सूर्यस्य देवत्वं ३३, ३७
तदश्विना भिषजा १९, ८२
तदस्य रूपममृतँ १९, ८१
तदिदास भुवनेषु ३३, ८०
तदेजति तन्नैजति ४०, ५
तदेवाग्निस्तदादित्यः ३२, १
ताद्विप्रासो विपन्यवो ३४, ४४
तद्विष्णोः परमं पदँ ६, ५
तनूनपाच्छुचिव्रतः २१, १३
तनूनपात्यपथ ऋतस्य २९, २६
तनूनपादसुरो विश्व २७, १२
तनूपा अग्नेऽसि तन्वं ३, १७
तनूपा भिषजा सुते २०, ५६
तन्तुना रायस्पोषेण १५, ७
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः ३, २६
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो ३, ३
तन्नस्तुरीपमद्भुतं २७, २०
तन्नो वाते मयोभु २५, १७
तन्मित्रस्य वरुणस्य ३३, ३८
तपश्च तपस्यश्च १५, ५७
तपसे कौलालं मायायै ३०, ७
तपसे स्वाहा तप्यते ३९, १२
तप्तायनी मेऽसि ५, ९
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र १७, ३०
तमिन्द्रं पशवः सचा २०, ६९
तमीशानं जगतः २५, १८
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः ११, ३३
तमु त्वा पाथ्यो वृषा ११, ३४
तं पत्नीभिरनु गच्छेम १५, ५०
तं प्रत्नथा पूर्वथा ७, १२
तरणिर्विश्वदर्शतो ३३, ३६
तव भ्रमास आशुया १३, १०
तव वायवृतस्पते २७, ३४
तव शरीरं पतयिष्णु २९, २२
तवायँ सोमस्त्वम् २६, २३
तस्मा अरं गमाम ११, ५२; ३६, १६
तस्मादश्वा अजायन्त ३१, ८
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ३१, ६; ७
तस्य वयँ सुमतौ २०, ५२
तस्यास्ते सत्यसवसः ४, १८
ताँ सवितुर्वरेण्यस्य १७, ७४
ता अस्य सूददोहसः १२, ५५; १५, ६०
ता उभौ चतुरः पदः २३, २०
ता न आ वोढम् २०, ८३
ता नासत्या सुपेशसा २०, ७४
तान्पूर्वया निविदा २५, १६
ता भिषजा सुकर्मणा २०, ७५
तिरश्चीनो विततो ३३, ७४
तिस्र इडा सरस्वती २१, १९
तिस्रस्त्रेधा सरस्वती २०, ६३
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदँ २७, १९
तिस्रो देवीर्हविषा २०, ४३
तीव्रान्घोषान्कृण्वते २९, ४४
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम १२, ११६
ते अस्य योषणे २७, १७
ते आचरन्ती समनेव २९, ४१
तेजः पशूनाँ हविः १९, ९५
तेजोऽसि तेजो मयि १९, ९
तेजोऽसि शुक्रममृतम् २२, १
ते नो अर्वन्तो हवन ९, १७
ते हि पुत्रासो अदितेः ३, ३३
त्रया देवा एकादशः २०, ११
त्रातारमिन्द्रमवितारम् २०, ५०
त्रिँशद्धाम विराजति ३, ८
त्रिधा हितं पणिभिः १७, ९२
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष ३१, ४
त्रिवृदासे त्रिवृते त्वा १५, ९
त्रीणि त आहुर्दिवि २९, १५
त्रीणि पदा वि चक्रमे ३४, ४३
त्रीणि शता त्री सहस्राणि ३३, ७
त्रीन्त्समुद्रान्त्समसूपत् १३, ३१
त्र्यम्बकं यजामहे ३, ६०
त्र्यवयो-गायत्रै पश्व २४, १२
त्र्यविश्च मे त्र्यवी च १८,२६
त्र्यायुषं जमदग्नेः ३, ६२
त्वं यविष्ठ दाशुषो १३, ५२; १८, ७७
त्वँ सोम पितृभिः १९, ५४
त्वँ सोम प्र चिकितो १९, ५२
त्वं नो अग्ने तव देव ३४, १३
त्वं नो अग्ने वरुणस्य २१, ३
त्वमग्न ईडितः १९, ६६
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशु ११, २७
त्वमग्ने प्रथमो अजिराः ३४,१२
त्वमग्ने व्रतपा असि ४, १६

त्वमङ्ग प्रशँ स्रिषो ६, ३७
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि ३३, ६६
त्वमिमा ओषधीः सोम ३४, २२
त्वमुत्तमास्योषधे तव १२, १०१
त्वया हि नः पितरः १९, ५३
त्वष्टा तुरीपो अद्भुत २१, २०
त्वष्टा दध्च्छुष्मम् २०, ४४
त्वष्टा वीर देवकामं २९, ९
त्वाँ हि मन्द्रतमम् ३३, १३
त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वा १२, ९८
त्वां चित्रश्रवस्तम १५, ३१
त्वामग्ने अङ्गिरसो १५, २८
त्वामग्ने पुष्करादधि १५, २२
त्वामग्ने यजमाना अनु. १२, २८
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा २७, ३
त्वामद्य ऋष आर्षेयः २१, ६१
त्वामिद्धि हवामहे २७, २७
त्वे अग्ने स्वाहुत ३३, १४

दँष्ट्राभ्यां मलिम्लूजम्भ्यै ११, ७८
दक्षिणामा रोह १०, ११
दधिक्राव्णो अकारिषं २३, ३२
दस्रा युवाकवः सुता ३३, ५८
दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय ३९, २
दिवः पृथिव्याः पर्योज २९, ५३
दिवस्परि प्रथमं जज्ञे १२, १८
दिवि धा इमं यज्ञम् ३८, ११
दिवि पृष्टो अरोचत ३३, ९२
दिवि विष्णुर्व्यक्रँस्त २, २५
दिवो मूर्धाऽसि पृथिव्या १८, ५४
दिवो वा विष्ण उत ५, १९
दीक्षायै रूपँ शष्पाणि १९, १३
दीर्घायुस्त ओषधे १२, १००
दुरो देवीर्दिशो महीः २१, १६
दृँहस्व देवि पृथिवि ११, ६९
दृते दृँह मा ज्योक्ते ३६, १९
दृते दृँ मा मित्रस्य ३६, १८
दृशाना रुक्म सर्व्या १२, १; २५
दृष्ट्वा परिस्रुतो रसँ १९, ७९
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् १९, ७७
देव इन्द्रो नराशँसः २१, ५५; २८, १९
देवं-देवं वोऽवसे ३३, ९१
देवं बर्हिः सरस्वती २१, ४८
देवं बर्हिरिन्द्रँ सुदेवं २८, १२
देवं बर्हिर्वयोधसं २८, ३५
देवं बर्हिर्वारितीनां २१, ५७, २८, २१; ४४
देवकृतस्यैनसोऽव ८, १३
देवश्रुतौ देवेव्या ५, १७
देव सवितः प्रसुव ९, १; ११, ७; ३०, १
देव सवितरेष ते ५, ३९
देवस्त्वा सवितोद्वपतु ११, ६३
देवस्य चेततो महीं २२, ११
देवस्य त्वा सवितुः १, १०, २१, २४; ५, २२, २६; ६, १, ९, ३०; ९, ३०, ३८; ११, ९, २८; १८, ३७; २०, ३; ३७, १; ३८, १
देवस्य सवितुर्मतिम् २२, १४
देवस्याहँ सवितुः ९, १०; १३
देवहूर्यज्ञ आ च १७, ६२
देवा गातुविदो गातुं ८, २१
देवा देवानां भिषजा २१, ५३
देवा दैव्या होतारा २८, १७; ४०
देवानां भद्रा सुमतिः २५, १५
देवान्दिवमगन्यज्ञः ८, ६०
देवा यज्ञमतन्वत १९, १२
देवासो हि ष्मा मनवे ३३, ९४
देवी उषासानक्ता २८,१४; ३७
देवी उषासावश्विना २१, ५०
देवी ऊर्जाहुती दुघे २१, ५२; २८,१६,३९
देवी जोष्ट्री वसुधिती २८,१५; ३८
देवी जोष्ट्री सरस्वती २१, ५१
देवी द्यावापृथिवी ३७, ३
देवीराप एष वो ८, २६
देवीरापः शुद्धा वोढ्वँ ६, १३
देवीरापो अपां नपाद्यो ६, २७
देवीर्द्वार इन्द्रँ सङ्गाते २८, १३
देवीर्द्वारो अश्विना २१, ४९
देवीर्द्वारो वयोधसँ २, ३६
देवीस्तिस्रो २१, ५४; २, १८; ४१
देवेन नो मनसा ३४, २३
देवेभ्यो हि प्रथमं ३३, ५४
देवो अग्निः स्विष्टकृत् २१, ५८; २८, २२; ४५
देवो देवैर्वनस्पतिः २१, ५६; २८, २०
देवो नराशँसो देवम् २८, ४२
देवो वनस्पतिर्देवम् २८, ४३
देव्यो वम्रयो भूतस्य ३७, ४
देहि मे ददामि ते ३, ५०
देव्या अध्वर्यवस्त्वा २, ४२
दैव्या मिमाना मनुषः २०, ४२
दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे १७, ५६
दैव्यावध्वर्यू आ गतँ ३३, ३३; ७३
दैव्या होतारा ऊर्ध्वम् २७, १८
दैव्या होतारा प्रथमा २९, ३२
दैव्या होतारा भिषजा २१, १८
द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं ५, ४३
द्युमिरक्तुभिः परि ३४, ३०
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ ३६, १७
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिः २३, १२; ५४
द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं २३, ४३
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी ११, २०
द्वारो देवीरन्वस्य २७, १६
द्विपदा याश्चतुष्पदाः २३, ३४
द्वे विरूपे चरतः ३३, ५
द्वे सृती अश्रृणवं १९, ४७
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीम् १३, ५
द्रविणोदाः पिपीषति २६, २२
द्रवन्नः सर्पिरा सुतिः ११, ७०
द्रापे अन्धसस्पते १६, ४७
द्रुपदादिव मुमुचानः २०, २०

धन्वना गा धन्वना २९, ३९
धर्ता दिवो वि भाति ३७, १६
धाता रातिः सवितेदं ८, १७
धानाः करम्भः सक्तवः १९, २१
धानामाँ रूपं कुवलं १९, २२
धानावन्तं करम्भिणम् २०, २९

धान्यमसि धिनुहि १, २०
धामच्छदग्निरिन्द्रो १८, ७६
धामं ते विश्वं भुवनम् १७, ९९
धूम्रान्वसन्तायालभते २४, ११
धूम्रा बभ्रूनीकाशाः २४, १८
धूरसि धूर्व धूर्वन्तम् १, ८
धृष्टिरस्यपाग्ने अग्नि १, १७
ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिः १४, १
ध्रुवसदं त्वा नृषदं ९, २
ध्रुवाऽसि धरुणास्तृता १३, १६
ध्रुवाऽसि धरुणेतो १३, ३४
ध्रुवासि ध्रुवोऽयं ५, २८
ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृँह ५, १३

नक्तोषासा समनसा १२, २; १७, ७०
नक्षत्रेभ्यः स्वाहा २२, २८
न तं विदाथ य द्मा १७, ३१
न तद्रक्षाँसि न ३४, ५१
न तस्य प्रतिमा ३२, ३
न ते दूरे परमा चित् ३४, १९
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो २७, ३६
नदीभ्यः पौजिष्ठम् ३०, ८
नभश्च नभस्यश्च १४, १५
नम आशवे च १६, ३१
नम उष्णीषिणे १६, २२
नमः कपर्दिने च १६, २९
नमः कूप्याय च १६, ३८
नमः कृत्स्नायतया १६, २०
नमः पर्णाय च १६, ४६
नमः पार्याय च १६, ४२
नमः शङ्खवे च १६, ४०
नमः शम्भवाय च १६, ४१
नमः शुष्क्याय च १६, ४५
नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यः १६, २८
नमः सभाभ्यः १६, २४
नमः सिकत्याय च १६, ४३
नमः सु ते निर्ऋते १२, ६३
नमः सेनाभ्यः १६, २६
नमः सोभ्याय च १६, ३३
नमः स्रुत्याय च १६, ३७
नमस्त आयुधाय १६, १४
नमस्तक्षभ्यो १६, २७
नमस्ते अस्तु विद्युते ३६, २१
नमस्ते रुद्र मन्यव १६, १
नमस्ते हरसे शोचिषे १७, ११; ३६, २०
नमो गणेभ्यो १६, २५
नमो ज्येष्ठाय च १६, ३२
नमो धृष्णवे च १६, ३६
नमो बभ्लुशाय १६, १८
नमो बिल्मिने च १६, ३५
नमो मित्रस्य वरुणस्य ४, ३५
नमो रोहिताय १६, १९
नमो वः पितरो २, ३२
नमो वश्चते परि १६, २१
नमो वन्याय च १६, ३४
नमो वात्याय च १६, ३९
नमो विसृजद्भ्यो १६, २३
नमो व्रज्याय च १६, ४४
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय १६, ८
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो १६, ६४-६६
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये १३, ६
नमो हिरण्यबाहवे १६, १७
नमो ह्रस्वाय च १६, ३०
न यत्परो नान्तर २०, ८२
नराशँसः प्रति शूरो २०, ३७
नराशँसस्य महिमानम् २९, २७
नर्माय पुँश्चलूँ हसाय ३०, २०
नवदशभिरस्तुवत १४, ३०
नवभिरस्तुवत १४, २९
नववि ँ शत्याऽस्तुवत १४, ३१
न वा उ एतन्म्रियसे २३, १६; २५, ४४
नहि तेषाममा चन ३, ३२
नहि स्पशमविदत् ३३, ६०
नाना हि वां देव १९, ७
नाभा पृथिव्याः समिधाने ११, ७६
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं २०, ९
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ ३१, १३
नार्यस्ते पत्न्यो लोभ २३, ३६
नाशयित्री बलासस्या १२, ९७
निक्रमणं निषदनं २५, ३८
नियुत्वान्वायवा गहि २७, २९
निवेशनः सङ्गमनः १२, ६६
नि षसाद धृतव्रतो १०, २७; २०, २
नि होता होतृषदने ११, ३६
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः १६, ५६-५७
नृत्ताय सूतं गीताय ३०, ६
नृषदे वेडप्सुषदे १७, १२

पञ्च दिशो दैवीः १७, ५४
पञ्च नद्यः सरस्वतीम् ३४, ११
पञ्चस्वन्तः पुरुष आ २३, ५२
पथस्पथः परिपतिं ३४, ४२
पयः पृथिव्यां पयः १८, ३६
पयसा शुक्रममृतं १९, ८४
पयसो रूपं यद्यवा १९, २३
पयसो रेत आभृतं ३८, २८
परमस्याः परावतो ११, ७२
परमेष्ठी त्वा सादयतु १५, ५८; ६४
परमेष्ठयभिधीतः ८, ५४
परं मृत्यो अनु परेहि ३५, ७
परस्या अधि संवतो ११, ७१
परि ते दूडभो रथो ३, ३६
परि ते धन्वनो हेतिः १६, १२
परि त्वा गिर्वणो ५, २९
परि त्वाऽग्ने पुरं वयं ११, २६
परि द्यावापृथिवी ३२, १२
परि नो रुद्रस्य हेतिः १६, ५०
परि माऽमे दुश्चरितात् ४, २८
परि वाजपतिः कविः ११, २५
परिवीरसि परि त्वा ६, ६
परीतो षिञ्चता सुत ँ २९, २
परीत्य भूतानि परीत्य ३२, ११
परीमे गामनेषत ३५, १८
परो दिवा पर एना १७, २९
पवमानः सो अद्य १९, ४२
पवित्रेण पुनीहि मा १९, ४०
पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ १, १२; १०, ६

पशुभिः पशूनाप्नोति १९, २०
पष्ठवाट् च मे पष्ठौही १८, २७
पष्ठवाहो विराज २४, १३
पातं नो अश्विना २०, ६२
पावकया यश्चितयन्त्या १७, १०
पावकवर्चा शुकवर्चा १२, १०७
पावका नः सरस्वती २०, ८४
पाहि नो अग्न एकया २७, ४३
पिता नोऽसि पिता नो ३७, २०
पितुं नु स्तोषं महो ३४, ७
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः १९, ३६
पीवो अन्ना रयिवृधः २७, २३
पुत्रमिव पितरौ १०, ३४; २०, ७७
पुनन्तु मा देवजनाः १९, ३९
पुनन्तु मा पितरः १९, ३७
पुनरासद्य सदनम् १२, ३९
पुनरूर्जा नि वर्तस्व १२, ९; ४०
पुनर्नः पितरो मनो ३, ५५
पुनर्मनः पुनरायुर्म ४, १५
पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा १२, ४४
पुनाति ते परिस्रुतँ १९, ४
पुरा क्रूरस्य विसृपो १, २८
पुरीष्यासो अग्नयः १२, ५०
पुरीष्योऽसि विश्वभरा ११, ३२
पुरुदस्मो विषुरूप ८, ३०
पुरुष एवेदँ सर्वं ३१, २
पुरुषमृगश्चन्द्रमस्त्रो २४, ३५
पूर्णा दर्वि परा पत ३, ४९
पूषणं वनिष्ठुना २५, ७
पूषन्तव व्रते वयं ३४, ४१
पूषा पञ्चाक्षरेण ९, ३२
पृच्छामि त्वा चितये २३, ४९
पृच्छामि त्वा परमन्तं २३, ६१
पृथिवि देवयजनि १, २५
पृथिवी च म इन्द्रश्च १८, १८
पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं १४, १९
पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षम् १७, ६७
पृथिव्याः पुरीषमसि १४, ४
पृथिव्याः सधस्थादग्निं ११, १६
पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय २२, २९
पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निः २४, ४
पृषदश्वा मरुतः २५, २०
पृष्टो दिवि पृष्टो १८, ७३
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरम् २०, ८
प्रधासिनो हवामहे ३, ४४
प्रजापतये च वायवे २४, ३०
प्रजापतये च जुष्टं २२, ५
प्रजापतये पुरुषान् २४, २९
प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः ३९, ५
प्रजापतिर्विश्वकर्मा १८, ४३
प्रजापतिश्चरति ३१, १९
प्रजापतिष्ट्वा सादयतु १३, १७
प्रजापते न त्वदेतानि १०, २०; २३, ६५
प्रजापतेस्तपसा २९, ११
प्रजापतौ त्वा देवतायां ३५, ६
प्र तद्विष्णु स्तवते ५, २०
प्र तद्वोचेदमृतं नु ३२, ९
प्रति क्षत्रे प्रति २०, १०
प्रतिपदसि प्रतिपदे ८५, ८
प्रति पन्थामद्यहि ४, २९
प्रतिश्रुत्काया अर्तनं ३०, १९
प्रति स्पशो वि सृज १३, ११
प्रतीचीमा रोह १०, १२
प्रतूर्त्त वाजिन्ना द्रव ११, १२
प्रतूर्वन्नेह्यवक्राम ११, १५
प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा १,७; २९
प्रथमा द्वितीयैः २०, १२
प्रथमा वाँ सरथिना २९, ७
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः ३४, ५७
प्र नो यच्छत्वर्यमा ९, २९
प्र पर्वतस्य वृषभस्य १०, १९
प्र-प्रायमग्निर्भरतस्य १२, ३४
प्र वाहवा सिसृतं २१, ९
प्र मन्महे शवसा ३४, १६
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वम् १६,९
प्र यामिर्यासि दाश्वाँसम् २७, २७
प्र व इन्द्राय बृहते ३३, ९६
प्र वायुमच्छा बृहती ३३, ५५
प्र वावृजे सुप्रया ३३, ४४
प्र वीरया शुचयो ३३, ७०
प्र वो महे मन्दमानाय ३३, २३
प्र वो महे महि नमो ३४, १७
प्रसद्य भस्मना योनिम् १२, ३८
प्रस्तरेण परिधिना १८, ६३
प्रागपागुदगधराक्सर्वतः ६, ३६
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा २९, २९
प्राचीमनु प्रदिशं १७, ६६
प्राच्यै दिशे स्वाहा २२, २४
प्राणं मे पाह्यपानं १४, ८
प्राणपा अपानपा १७, १५
प्राणपा मे अपान पाः २०, ३४
प्राणश्च मेऽपानंश्च १८, २
प्राणाय मे बर्चोदा ७, २७
प्राणाय स्वाहाऽपानाय २२, २३; २३,१८
प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रँ ३४, ३४
प्रातर्जितं भगमुग्रँ ३४, ३५
प्रेता जयता नर १७, ४६
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि १२, ३२
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि १७, ७६
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः ३३, ८९; ३७, ७
प्रैतु वाजी कनिक्रदत् ११, ४६
प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोति १९, १९
प्रोथदश्वो न वयसे १५, ६२
प्रोह्यमाणः सोम आगतो ८, ५६
बट् सूर्य श्रवसा ३३, ४०
बष्महाँ असि सूर्य ३३, ३९
बर्हिषदः पित्तरः १९, ५५
बलविज्ञाय स्थविरः १७, ३७
बहीनां पिता बहुरस्य २९, ४२
बाहू में बलम् २०, ७
बीभत्साये पौल्कसं ३०, १७
बृहदिन्द्राय गायन २०, ३०
बृहन्निदिध्म एषा ३३, २४
बृहस्पते अति यदर्यो २६,३
बृहस्तपते परि दीया १७, ३६
बृहस्पते वाजं जय ९, ११
बृहस्पते सवितर्बोधय २७, ८

बोधा मे अस्य बचसो १२, ४२
ब्रह्म क्षत्रं पवते १९, ५
बह्म जज्ञान प्रथमं १३, ३
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य ३४, ५८
ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय ३०, ५
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः २३, ७८
ब्रह्माणि मे मतयः ३३, ७८
ब्राह्ममद्य विदेयं ७, ४६
ब्राह्मणासः पित्तरः २९, ४७
ब्राह्मणोऽस्य मुखम् ३१, ११

भग एव भगवाँ ३४, ३८
भग प्रणेतर्भग ३४, ३६
भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम २५, २१
भद्रा उत प्रशस्तयो १५, ३९
भद्रो नो अग्निराहुतो १५, ३८
भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व ४, ३४
भवतं नः समनसौ ५, ३; १२, ६०
भायै दार्वाहारं ३०, १२
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो १८, ४२
भुवो यज्ञस्य रजसः १३, १५; १५, २३
भुताय त्वा नारातये १, ११
भूम्या आस्पूनालभते २४, २६
भूरसि भूमिरसि १३, १८
भूर्भुवः स्वः तत्सवितुः ३६, ३
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः ३, ३७
भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव ३, ५
भेषजमसि भेषजं ३, ५९

मखस्य शिरोऽसि ३७, ८
मधवे स्वाहा माधवाय २२, ३१
मधु नक्तमुतोषसो १३, २८
मधुमती इषस्कृधि ७, २
मधुमान्ना वनस्पतिः १३, २९
मधु वाता ऋतायते १३, २७
मधुश्च माधवश्च १३, २५
मध्वा यज्ञं नक्षसे २७, १३
मनसः काममाकूतिं ३९, ४
मनस्त आ प्यायता ६, १५
मनो जूतिर्जुषताम् २, १३
मनो न येषु हवनेषु ७, १७
मनो न्वाह्वामहे ३, ५३
मनो मे तर्पयत ६, ३१
मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय ३०, १४
मयि गृह्णाम्यग्ने १३, १
मयि त्यदिन्द्रियं ३८, २७
मयोदमिन्द्र इन्द्रियं २, १०
मयुः प्राजापत्य उलो २४, ३१
मरुताँ स्कन्धा विश्वेषां २५, ६
मरुतो यस्य हि क्षये ८, ३१
मरुत्वन्तं वृषभं ७, ३६
मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो ७, ३८
मर्माणि ते वर्मणा १७, ४९
मशकान् केशैरिन्द्रँ २५, ३
महाँ इन्द्रो नृवदा ७, ३९
महाँ इन्द्रो य ओजसा ७, ४०
महाँ इन्द्रो वज्रहस्तः २६, १०
महानाम्न्यो रेवत्यो २३, ३५
महि त्रीणामवोऽस्तु ३, ३१
मही द्यौः पृथिवी च ८, ३२; १३, ३२
महीनां पयोऽसि ४, ३
महीम् षु मातरँ २१, ५
महो अग्नेः समिधानस्य ३३, १७
महो अर्णः सरस्वती २०, ८६
मा छन्दः प्रमा छन्दः १४, १८
मा त इन्द्र ते वयं १०, २२
माता च ते पिता च २३, २४-२५
मातेष पुत्रं पृथिवी १२, ६१
मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीत् २५, ३७
मा त्वा तपत्प्रिय २५, ४३
मा नः शँ स्रो अर रुषो ३, ३०
मा नस्तोके तनये १६, १६
मा नो महान्तमुत १६, १५
मा नो मित्रो वरुणो २५, २४
माऽपो मौषधीर्हिँ सीः ६, २२
मा भेर्मा संविक्था १, २३, ६, ३५
मा मा हिँ सीज्जनिता १२, १०१
मा वो रिषस्स्वनिता १२, ९५
मा सु भित्था मा सु ११, ६८
माहिर्भूर्मा पृदाकुः ६, १२; ८, २३
मित्रँ हुवे पूतदक्षं ३३, ५७
मित्रः सँसृज्य पृथिवी ११, ५३
मित्रश्च म इभ्द्रश्च १८, १७
मित्रस्य चर्षणीधृतो ११, ६२
मित्रस्य मा चक्षुषा ५, ३४
मित्रावरुणाभ्यां त्वा ७, २३
मित्रो न एहि ४, २७
मित्रो नवाक्षरेण ९, ३३
मीढुष्टम शिवतम १६, ५१
मुखँ सदस्य शिरः १९, ८८
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो १२, ९०
मूर्धानं दिवो अरतिं ७, २४; ३३
मूर्धा वयः प्रजापतिः १४, ९
मूर्धाऽसि राड् ध्रुवाऽसि १४, २१
मृगो न भीमः कुचरो १८, ७१
मेधां मे वरुणो ३२, १५
मो षू ण इन्द्रात्र ३, ४६

य आत्मदा बलदा २५, १३
य इन्द्र इन्द्रिवं दधुः २०, ७०
व इमा विश्वा १७, १७
य इमे द्यावापृथिवी २९, ३४
व एतावन्तश्च भूयाँ सः १६, ६३
यकासकौ शकुन्तिका २३, २२
यकोऽसकौ शकुन्तक २३, २३
य क्रन्दसी अवसा ३२, ७
यः प्राणतो निमिषतो २३, ३; २५, ११
यज्ञा नो मित्रावरुणा ३३, ३
यज्ञुर्भिराप्यन्ते ग्रहा १९, २८
यज्ञाग्रतो दूरम् ३४, १
यज यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं ८, २२
यज्ञस्य दोहो विततः ८, ६२
यज्ञा-यज्ञा वो अग्नये २७, ४२
यज्ञेन यज्ञमयजन्त ३१, १६
यज्ञो देवानां प्रत्येति ८, ४; ३३, ६८
यते स्वाहा धावते २२, ८
यतो-यतः समीहसे ३६, २२

यत्ते गात्रादग्निना २५, ३४
यज्ञे पवित्रमर्चिषि १९, ४१
यत्ते सादे महसा २५, ४०
यत्ते सोम दिवि ज्योतिः ६, ३३
यत्पुरुषं व्यदधुः ३१, १०
वत्पुरुषेण हविषा ३१, १४
यत्प्रज्ञानमुत चेतो ३४, ३
यत्र धारा अनपेता १८, ६५
यत्र वाणाः सम्पतन्ति १७, ४८
यज्ञ ब्रह्म च क्षत्रं २०, २५
यत्रेन्द्रश्च वायुश्च २०, २६
यत्रोजधीः समग्मत १२, ८०
यथेमां वाचं कल्याणी २६, २
यदन्क्रदः प्रथमं २९, १२
यदग्रे कानि-कानि ११, ७३
यदत्त्युपजिह्विका ११, ७४
यदत्र रिप्तँ रसिनः १९, ३५
यदद्य कच्च वृत्रहन् ३३, ३५
यदद्य सूर उदिते ३३, २०
यदश्वस्य कविषो २५, ३२
यदश्वाय वास २५, ३९
यदस्या अँहुभेद्याः २३, २८
यदाकूतात्समसुस्रो १८, ५८
यदापिपेष मातरं १९, ११
यदापो अघ्न्या इति २०, १८
यदाबध्नन् दाक्षायणा ३४, ५२
यदि जाग्रद्यदि २०, १६
यदि दिवा यदि नक्तम् २०, १५
यदिमा वाजयन्नहम् १२, ८५
यदूवध्यमुदरस्य २५, ३३
यद्धामे यदरण्ये ३, ४५; २०, १७
यदत्तं वत्परावानं १८, ६४
यद्देवा देवहेडनं २०, १४
यद्देवासो ललामगुं २३, २९
यद्वाजिनो दाम २५, ३१
यद्वातो अपो अगनीगन् २३, ७
यद्वाहिष्ठं तदग्नये २६, १२
यद्धरिणो यवमत्ति २३, ३०-३१
यद्धविष्यमृतुशो २५, २७
वन्ता च मे धर्ता १८, ७
यं ते देवी निर्ऋतिः १२, ६५
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि १४, २२
यन्निर्णिजा रेक्णसा २५, २५
यन्नीक्षणं माँस्पचन्या २५, ३६
यन्मे छिद्रं चक्षुषो ३६, २
यमग्ने कव्यवाहन १९, ६४
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा ६, २९
यमश्विना नमुचेरा १९, ३४
यमश्विना सरस्वती २०, ६८
यमाय त्वाऽग्निरस्वते ३८, ९
यमाय त्वा मखाय ३७, ११
यमाय यमसूमथर्वभ्यो ३०, १५
यमाय स्वाहाऽन्तकाय ३८, १३
यमेन दत्तं त्रित २९, १३
यं परिधिं पर्यधत्था २, १७
यवानां भागोऽस्ययवानां १४, २६
यश्चिदापो महिना २७, २६
वस्तु सर्वाणि भूताणि ४०, ६
यस्ते अद्य कृणवत् १२, २६
यस्ते अश्वसनिर्भक्षो ८, १२
यस्ते द्रप्स स्कन्दति ७, २६
यस्ते रसः सम्मृतः १९, ३३
यस्ते स्तनः शशयो ३८, ५
यस्माज्जातं न पुरा ३२, ५
यस्मान्न जातः परो ८, ३६
यस्मिन्त्सर्णाणि भूतानि ४०, ७
यस्मिन्नश्वास ऋषभास २०, ७८
यस्मिन्नृचः साम ३४, ५
यस्य कुर्मो गृहे १७, ५२
यस्य प्रयाणमन्वस्य ११, ६
यस्यायं विश्व आर्यो ३३, ८२
यस्यास्ते घोर आसन् १२, ६४
यस्येमे हिमवन्तो २५, १२
यस्यै ते यज्ञियो गर्भो ८, २९
यस्यौषधीः प्रसर्पथ १२, ८६
यॉ आऽवह उशतो देव ८, १९
या इषवो यातुधानानां १३, ७
या ओषधीः पूर्वा जाता १२, ७५
या ओषधीः सोमराज्ञीः १२, ९२-९३
याः फलिनीर्या अफला १२, ८९
याः सेना अभीत्वरीः ११, ७७
या ते अग्नेऽयःशया ५, ८
या ते घर्म दिव्या ३८, १८
या ते धामानि परमाणि १७, २१
या ते धामानि हविषा ४, ३७
या ते धामान्युश्मसि ६, ३
या ते रुद्र शिवा १६, २; ४९
या ते हेतिर्मीढुष्टम १६, ११
यामिषुं गिरिशन्त १६, ३
यां मेधा देवगणाः ३२, १४
यावती द्यावापृथिवी ३८, २६
या वां कशा मधुमती ७, ११
या वो देवाः सूर्ये १३, २३; १८, ४७
या व्याघ्रं विषूचिकोभौ १९, १०
वा शतेन प्रतनोधि १३, २१
याश्चेदमुपश्रृण्वन्ति १२, ९४
यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो १३, २२; १८, ४६
युक्तेन मनसा वयं ११, २
युक्त्वाय सविता देवान् ११, ३
युक्ष्वा हि केशिना हरी ८, ३४
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ १३, ३७; ३३, ४
युजे यां ब्रह्म पूर्व्यँ ११,५
युञ्जते मन उत ५, १४; ११, ४;३७, २
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं २३, ५
युञ्जन्त्यस्य काम्या २३, ६
युञ्जाथाँ रासभं ११, १३
युञ्जानः प्रथमं मनः ११, १
युनक्त सीरा वि १२, ६८
युवं तमिन्द्रापर्वता ८, ५३
युवँ सुराममश्विना १०, ३३; २७, ७६
युष्मा इन्द्रोऽवृणीत १, १३
यूपव्रस्का उत ये २५, २९
ये अग्निध्वाता १९, ६०
ये चेह पितरो १९, ६७
ये जनेषु मलिम्लव ११, ७९
ये तीर्थानि प्रचरन्ति १६, ६१
ये ते पन्थाः सवितः ३४, २७

वालो वा मनो वा ९, ७
वाममद्य सवितर्वाममु ८, ६
वायन्यैर्वायव्यान्याप्नोति १९, २७
वायुः पुनातु सविता ३५, ३
वायुरप्रेगा यज्ञप्रीः २७, ३१
वायुरनिलममृतम् ४०, १५
वायुष्ट्वा पचतैरवतु २३, १३
वायोः पूतः पवित्रेण १९, ३
वायो ये ते सहस्रिणो २७, ३२
वायो शुक्रो अयामि २७, ३०
वार्त्रहत्याय शवसे १८, ६८
विकिरिद्र विलोहित १६, ५२
विज्यं धनुः कपर्दिनो १६, १०
वित्तं च मे वेद्यं १८, ११
विदद्यदी सरमा ३३, ५९
विद्या ते अग्ने त्रेधा १२, १९
विद्या चाविद्यां च ४०, १४
विधृतिं नाभ्या घृत ँ २५,९
विधेम ते परमे १७, ७५
वि न इन्द्र मृधो ८, ४४; १८, ७०
वि पाजसा पृथुना ११, ४९
विभक्तार ँ हवामहे ३०, ४
विभूरसि प्रवाहणो ५, ३१
विभूर्मात्रा प्रभूः पित्रा २२, १९
विभ्राड् बृहत्पिबतु ३३, ३०
विमान एष दिवो १७, ५९
वि मुच्यध्वमघ्न्या १२,७३
विराडसि दक्षिणा दिग् १५, ११
विराड्ज्योतिरधारयत् १३, २४
विवस्वन्नादित्यैष ते ८, ५
विश्वकर्मन् हविषा ८, ४६; १७, २२; २४
विश्वकर्मा त्वा सादयतु १४, १२; १४
विश्वकर्मा विमना १७, २६
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट १७, ३२
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो १७, १९
विश्वस्मै प्राणायापानाय १३,१९
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य १२, २३
विश्वस्य दूतममृतं १५, ३३
विश्वस्य मूर्धन्नधि १८, ५५
विश्वा आशा दक्षिण ३८,१०
विश्वानि देव सवितः ३०, ३
विश्वा रूपाणि प्रति १२, ३
विश्वासां भुवां पते ३७, १८
विश्वे अद्य मरुतो १८, ३१; ३३, ५२
विश्वे देवा अ ँशुषु ८, ५७
विश्वे देवाः श्रृणुत ३३, ५३
विश्वे देवाश्चससेषु ८, ५८
विश्वे देवास आ गत ७, ३४
विश्वेभिः सोम्यं मधु ३३, १०
विश्वेषामदितिः ३३, १६
विश्वो देवस्य नेतुः ४, ८; ११, ६७; २२, २१
विष्णोः कर्माणि पश्यत ६, ४; १३, ३३
विष्णोः कमोऽसि सपत्नहा १२
विष्णो रराटमसि ५, २१
विष्णोर्नुकं वीर्याणि ५, १८
वीत ँ हविः शमित ँ १७, ५७
वीतिहोत्रं त्वा कवे २, ४
वृष्ण ऊर्मिरसि १०, २
वेदाहमस्य भुवनस्य २३, ६०
वेदाहमेतं पुरुषं ३१, १८
वेदेन रुपे व्यपिवत् १९, ७८
वेदोऽसि येन त्वं २, २१
वेद्या वेदिः समाप्यते १९, १७
वेनस्तत्पश्यन्निहितं ३२, ८
वैश्वदेवी पुनती देव्या १९, ४४
वैश्वानरस्य सुमतौ २६, ७
वैश्वानरो न ऊतये १८, ७२; २६, ८
व्यचस्वतीरुर्विया वि २९, ३०
व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्मा ४, ११
व्रतं च म ऋतवश्च १८, २३
व्रतेन दीक्षामाप्नोति १९, ३०
व्रीहयश्च मे यवाश्च १८, १२
व्रेशीनां त्वा पत्मन्ना ८, ४८

शं च मे मयश्च १८, ८
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः २३, ४४
शं नो देवीरभिष्टय ३६, १२
शं नो भवन्तु वाजिनो ९, १६; २१, १०
शं नो मित्रः शं ३६, ९
शं नो वातः पवता ँ ३६, १०
शं वातः श ँ हि ते ३५, ८
शतं वो अम्ब धामानि १२, ७६
शतमिन्नु शरदो २५, २२
शमिता नो वनस्पतिः २१, २१
शर्म च स्थो वर्म च ११, ३०
शर्मास्यवधूत ँ १, १४; १९
शादं दद्भिरवकां २५, १
शारदेन ऋतुना देवा २१, २६
शिरो मे श्रीर्यशो २०, ५
शिल्पा वैश्वदेव्यो २४, ५
शिवेन वचतः त्वा १६, ४
क्षिवो नामासि ३, ६३
शिवो भव प्रजाभ्यो ११, ४५
शिवो भूत्वा मह्यमग्ने १२, १७
शुक्रं त्वा शुक्रेण ४, २६
शुक्रज्योतिश्च चित्र १७, ८०
शुक्रश्च शुचिश्च १४, ६
शुद्धबालः सर्वशुद्ध २४, ३
शुन ँ सु फाला चि १२, ६९
शैशिरेण ऋ तुना देवा २१, २८
श्रायन्त इव सूर्य ३३, ४१
श्रीणामुदारो धरूणो १२, २२
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ३१, २२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वाह्निभिः ३३, १५
श्वात्राः पीता भक्त ४, १२
श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो ६, ३४
श्वित्र आदित्यानाम् २४, ३९

षडस्य विष्ठाः शतम् २३, ५८
षोडशी स्तोम ओजो १५, ३

संवत्सरोऽसि परि २७, ४५
सं वर्चसा पयसा २, २४; ८, १४; १६
सं वसाधा ँ स्वर्विदा ११, ३१
स वां मना ँ सि १२, ५८
स ँ श्वितं मे ब्रह्म ११, ८१
स ँ शितो रश्मिना रथः २३, १४

स ँसमिद्युवसे वृषन् १५, ३०
स ँसीदस्व महाँ असि ११, ३७
स ँसृष्टां वसुभी रुद्रैः ११, ५५
स ँसवभागा स्थेषा २, १८
स ँहितासि विश्वरूप्यूर्जा ३, २२
स ँहितो विश्वसामा १८, ३९
म इधानो वसुष्कविः १५, ३६
स इषुहस्तैः १७, ३५
संक्रन्दनेनानिमिषेण १७, ३४
सकायः सं वः सम्यश्वम् १५, २९
स जातो गर्भो असि ११, ४३
सजूरन्दो श्रयवोभिः १२, ७४
सजूर्ऋतुनिः सजूः १४, ७
सजूर्देवेन सवित्रा ३, १०
सजोषा इन्द्र सगणो ७, ३७
सं चेष्यस्वाग्ने प्र २७, २
संज्ञानमसि कामधरणं १२, ४६
सत्यं च मे श्रद्धा १८, ५
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त २७, ३८
स त्वं नो अग्ने २१, ४
मत्रस्य ऋद्धिरसि ८, ५२
सदसस्पतिमद्भुतं ३२, १३
स दुद्रवत्स्वाहुतः १५, ३४
सद्या जातो व्यमिमीत २९, ३६
सधमादो द्युम्निनीराम १०, ७
स न इन्द्राय यज्यवे २६, १७
स नः पावक दीदिवी १७, ९
स नः पितेव सूनवे ३, २४
स नो बन्धुर्जनिता ३२, १०
स नो भुवनस्य १८, ४४
सं ते पया ँसि समु १२, ११३
सं ते मनो मनसा ६, १८
सं ते वायुर्मातरिश्वा ११, ३९
सन्धये जारं गेहाय ३०, ९
सन्नः सिन्धुरवमृथ ८, ५९
सं त्वमग्ने सूर्यस्य ३, १९
स पर्यगाच्छुक्रम ४०, ८
सप्त ऋषयः प्रति ३४, ५५
सप्त ते अग्ने समिधः १७, ७९
सप्तास्यासन् परि ३१, १५
स प्रथमो बृहस्पतिः ७, १५
स बोधि सूरिर्मधवा १२, ४३
समस्य्ये देव्या धिया ४, २३
समग्निरश्विना गत ३७, १५
समध्वरावोपसो ३४, ३९
समास्त्वश्च ऋतवो २७, १
समित ँ संकल्पेथा ँ १२, ५७
समिदसि सूर्यस्त्या २, ५
समिद्ध इन्द्र उषसाम् २०, ३६
समिद्धे अग्नावधि १७, ५५
समिद्धो अग्निः समिधा २१, १२
समिद्धो अग्निरश्विना २०, ५५
समिद्धो अजन्कृदरं २९, १
समिद्धो अद्य मनुषो २९, २५
ममिधाऽग्नि दुवस्यत ३, १; १२, ३०
समिन्द्र णो मनसा ८, १५
समुद्रं गच्छ स्वाहा ६, २१
समुद्रस्य त्वाऽकयाग्ने १७, ४
समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ १७, ८९
समुद्राय त्वा वाताय ३८, ७
समुद्राय शिशुमारान् २४, २१
समुद्रे ते हृदयम् ८, २५, २०, १९
समुद्रे त्वा नृमणा १२, २०
समुद्रोऽसि नभस्वाना १८, ४५
समुद्रोऽसि विश्वव्यचा ५, ३३
सम्प्रच्वध्वमुप सम् १५, ५३
संवर्हिरङ्क्ता ँ हविषा २, २२
सम्भूतिं च विनाशं ४०, ११
सं सा सृजामि पयसा १८, ३५
सम्यक् स्रवन्ति सरितो १३, ३८; १७, ९४
सम्राडसि प्रतीची दिग् १५, १२
स यक्षदस्य महिमा २७, १५
सरस्वती मनसा १९, ८३
सरस्वती योन्यां १९, ९४
सरोभ्यो धैवरमुपस्था ३०, १६
सर्वे निमेषा जज्ञिरे ३२, २
सविता ते शरीराणि ३५, ५
सविता ते शरीरेभ्यः ३५, २
सविता त्वा सवाना ँ ९, ३९
सविता प्रथमेऽहन् ३९, ६
सविता वरुणो दधद् २०, ७१
सवितुस्त्वा प्रसवः १, ३१
सवित्रा प्रसवित्रा १०, ३०
सहदानुं पुरुहूत १८, ६९
सह रय्या नि वर्तस्व १२, १०; ४१
सह हव्यवाडमर्त्यः २२, १६
सहश्च सहस्यश्च १४, २७
सहसा जातान् प्रणुदा १५, २
सहस्तोमाः सहच्छन्दसः ३४, ४९
सहस्रशीर्षा पुरुषः ३१, १
सहस्रस्य प्रमाऽसि १५, ६५
सहस्राणि सहस्रशो १६, ५३
सहस्व मे अरातीः १२, ९९
साकं यक्ष्म प्र पत १२, ८७
सा विश्वायुः सा विश्व १, ४
सिँह्यसि सपत्नसाही ५, १०
सि ँह्यसि स्वाहा ५, १२
सिञ्चति परिषिञ्चन्ति २०, २८
सिनीवालि पृथुष्टुके ३४, १०
सिनीवाली सुकपर्दा ११, ५६
सिन्धोरिव प्राध्वने १७, ९५
सीद त्वं मातुरस्य १२, १५
सीद होतः स्व उ लोके ११, ३५
सीरा युञ्जन्ति कवयो १२, ६७
सीसेन तन्त्रं मनसा १९, ८०
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं २५, ४५
सुगा वो देवाः सदना ८, १८
सुजातो ज्योतिषा सह ११, ४०
सुत्रामाणं पृथिवीं २१, ६
सुनावमा रुहेयम् २१, ७
सुपर्णः पार्जन्य आति २४, ३४
सुपर्ण वस्ते भृगो २९, ४८
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् १२, ४; १७, ७२
सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् ७, १८
सुवर्हिरग्निः पूषण्वान् २१, १५
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमो २३, ६३
सुमित्रिया न आप ३५,१२;३६,२३; ३८,२३

सुरावन्तं बर्हिषद् १९, ३२
सुवीरो वीरान् प्रजनयन् ७, १३
सुषारथिरश्वनिव ३४, ६
सुषुम्णः सूर्यरश्मिः १८, ४०
सुष्टुति ँसुमतीवृधो २२, १२
सुसदृशं त्वा वयं ३, ५२
सुसमिद्धाव शोचिषे ३, २
सूपस्था अद्य देवो २१, ६०
सूर्य एकाकी चरति २३, १०; ४६
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा १०, ४
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः १७, ५८
सूर्यस्य चक्षुरारोह ४, ३२
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे १५, ४२
सोम- राजानमवसे ९, २६
सोमः पवते सोमः ७, २१
सोममद्भ्यो व्यपिवत् १९, ७४
सोम राजन् विश्वास्त्वं ६, २६
सोमस्य त्वा द्युम्नेन १०, १७
सोमस्य त्विषिरसि १०, ५; १५
सोमस्य रूपं क्रीतस्य १९, १५
सोमान ँस्वरणं कृणुहि ३, २८
सोमाय कुलुञ्ज आरण्यो २४, ३२
सोमाय लवानालभते २४, २४
सोमाय ह ँसानालभते २४, २२
सोमो धेनु ँ सोमो ३४, २१
सोमो राजामृत ँ १९, ७२
सौरी बलाका शार्गः २४, ३३
स्तीर्ण बर्हिः सुष्टरीमा २९, ४
स्तोकानामिन्दुं प्रति २०, ४६
स्थिरो भव वीड्वङ्ग ११, ४४
स्योना पृथिवि नो ३५, २१; ३६, १३
स्योनाऽसि सुषदाऽसि १०, २६
स्रुचश्च मे चमसाश्च १८, २१
स्वगा त्वा देवेभ्यः २२, ४
स्वतवाँश्च प्रवासी १७, ८५
स्वयं वाजिस्तन्वं २३, १५
स्वयंभूरसि श्रेष्ठो २, २६
स्वराडसि सपत्नहा ५, २४
स्वराडस्युदीची दिग् १५, १३
स्वर्ण घर्मः स्वाहा १८, ५०
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त १७, ६८
स्वस्ति न इन्द्रो २५, १९
स्वाण्कृतोऽसि विश्वेभ्यः ७, ३; ६
स्वादिष्ठया मदिष्ठया २६, २५
स्वादुष ँसदः पितरो २९, ४६
स्वाद्वी त्वा स्वादुना १९, १
स्वाहा पूष्णे शरसे ३८, १५
स्वाहा प्राणेभ्यः साधि ३९, १
स्वाहा मरुद्भिः परि ३७, १३
स्वाहा यज्ञं मनसः ४, ६
स्वाहा यज्ञं वरुणः २१, २२
स्वाहा रुद्राय रुद्र ३८, १६
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह १४, ३
ह ँसः शुचिषद्वसुः १०, २४; १२, १४
हरये धूमकेतवो ३३, २
हविर्धानं यदश्विना १९, १८
हविष्मतीरिमा आपो ६,२३
हस्त आधाय सविता ११, ११
हिङ्काराय स्वाहा २२, ७
हिमस्य त्वा जरायुणा १७, ५
हिरण्ययेन पात्रेण ४०, १७
हिरण्यगर्भः समवर्तत १३, ४; २३,१; २५,१०
हिरण्यपाणिः सविता ३४, २५
हिरण्यपाणिमूतये २२, १०
हिरण्यरूपा उषसो १०,१६
हिरण्यश्रृङ्गोऽयो अस्य २९, २०
हिरण्यहस्तो असुरः ३४, २६
हृदे त्वा मनसे त्वा ६, २५; ३७, १९
हेमन्तेन ऋतुना देवा २१, २७
होताऽध्वर्युरावया २५, २८
होता यक्षत्तनूनपातम् २८, २; २५
होता यक्षत्तननपात् २१, ३०
होता यक्षतिस्रो देवीः २१, ३७; २८, ८
होता यक्षत्पेशस्वतीः २८, ३१
होता यक्षत्प्रचेतसा २८, ३०
होता यक्षत्प्रजापति ँ २३, ६४
होता यक्षत्त्वष्टारम् २८, ९
होता यक्षत्समिधाऽमिम् २१, २९
होता यक्षत्समिधान २८, २४
होता यक्षत्समिधेन्द्रम् २८, १
होता यक्षत्सरस्वतीं २१, ४४
होता यक्तत्सुपेशसा २१, ३५; २८, २९
होता यक्षत्सुबर्हिषं २८, २७
होता यक्षत्सुरेतसम् २८, २७
होता यक्षत्सुरेतसम् २१, ३८; २८, ३२
होता यक्षत्स्वाहाकृतीः २८, ३४
होता यक्षदग्नि ँ स्वाहा २१, ४०
होता यक्षदग्नि ँ स्विष्ट २१, ४७
होता यक्षदश्विनौ २१, ४१-४३
होता यक्षदिडाभिः २८, ३
होता यक्षादडेडित २१,३२
होता यक्षदिन्द्रम् २१, ४५; २८, ११
होता यक्षदीडेन्यम् २८, २६
होता यक्षदुवे २८, ६
होता यक्षदोजो न २८, ५
होता यक्षद्दुरो दिश. २१, ३४
होता यक्षद्दैव्या होतारा २१, ३६; २८, ७
होता यक्षद्बर्हिरूर्ण २१, ३३
होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं २८, ४
होता यक्षद्वनस्पति ँ २१, ३९, ४६; २८, १०; ३३
होता यक्षव्यचस्वतीः २८, २८
होता यक्षन्नराश ँसं २१, ३१

• • •